॥ जैन भवन ॥

तित्थयर

वर्ष : २९ अंक : १ अप्रैल २००५

ज्ञान से पदार्थों को जाना जाता है,
दर्शन से श्रद्धा होती है,
चारित्र से कमास्त्रव की रोक होती है,
और तप से शुद्धि होती है।

Sethia Oil Industries Ltd.

Manufacturers of De-oiled Rice Bran, Mustard Deoiled Cakes, Neem deoiled Powder, Ground-nut De-oiled Cakes, Mahua deoiled cakes etc. And Solvent Extracted Rice Bran Oil, Neem Oil, Mustard Oil etc.

Plant
Post Box No. 5
Lucknow Road
Sitapur - 261001 (U.P.)
Ph: 42017/42397/42073 (05862)
Gram - Sethia - Sitapur
Fax: 42790 (05862)

Registered Office
143, Cotton Street
Kol - 700 007
Ph: 238-4329/ 8471/5738
Gram - Sethia Meal

Executive Office
2, India Exchange Place
Kolkata - 700 001
Ph: 2201001/9146/5055
Telex: 217149 SOIN IN
FAX: 2200248 (033)

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - २९ अंक - १, अप्रैल, २००५

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिये
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : 2268-2655, Website : www.info@jainbhawan.com
e-mail : info@jainbhawan.com

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें —
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Subscription for one year : Rs. 120.00, US$ 30.00,
for three years : Rs. 300.00, US$ 80.00,
Life Membership : India : Rs. 1000.00, Foreign : US$ 320.00

Published by Smt. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from
P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655
and Printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street
Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन

डॉ. लता बोथरा

।। जैन भवन ।।

अनुक्रमणिका

क्र. सं. लेख	लेखक	पृ. सं.
१. व्याप्त व्यक्तित्व : अखंड कृतित्वः ऋषभदेव एवं अष्टापद	डॉ. लता बोथरा	७

मूल्य - ५.०० रूपये

कवरपृष्ठ : जैसलमेर के ज्ञान भंडार से प्राप्त श्री सरस्वती देवी का चित्र।

Composed by:

Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

हे विश्व विधाता, आदिनाथ
विराज रहे है अष्टापद पर हे ऋषभनाथ
स्वर्णशैल की उतुंग चोटी धन्य हो गयी आज
बन गयी पावन तीर्थ मुक्ति पुरी कैलाश

साधु सन्त जिनके दर्शन को आते
अष्टापद की यात्रा कर मुक्ति पाते
देवगण भी जिनके गुण गाते
उनके सन्देश सभी को मार्ग दिखाते
हे भाग्य विधाता, योगीनाथ
विराज रहे है अष्टापद पर हे ऋषभनाथ

सब संस्कारों के जन दाता
बन गये विश्व के प्रकाश नाथा
सूर्य भी जिनके आगे शीष झुकाता
इन्द्र-इन्द्राणी जिनको मस्तक नवाता
हे मोक्ष दाता, वृषभनाथ
विराज रहे है अष्टापद पर हे ऋषभनाथ

ब्राह्मी सुन्दरी को दे लिपि अक्षर ज्ञान
नारी जाति को दिया जिसने सम्मान
जिनके दर्शन से हुआ माता को केवल ज्ञान
हे आदि विधाता, पुरुषोत्तम नाथ
विराज रहे है अष्टापद पर हे ऋषभनाथ

अिस, मिस, कृषि का भेद बताया
अहिंसा अनेकान्त का रास्ता दिखाया
अपरिग्रह का सन्देश सुनाया
लोक कल्याण का मार्ग सुझाया
हे अग्रदाता, कैलाश नाथ
विराज रहे है अष्टापद पर हे ऋषभनाथ

राजा बन जन-जन का किया कल्याण
दिया मुक्त हस्त से सबको दान
छोड़ धन ऐश्वर्य, राज्य सम्मान
पाया अष्टापद पर निर्वाण
हे मुक्ति दाता, शिव नाथ
विराज रहे है अष्टापद पर हे ऋषभनाथ

क्रोध, लोभ, माया-मोह को जीतकर
बने जिन, बुध, शिव महान
ब्रह्मा बन दिया सृष्टि का ज्ञान
विष्णु बन किया जगत का कल्याण
हे ज्ञान दाता, कल्याण नाथ
विराज रहे है अष्टापद पर हे ऋषभनाथ

व्याप्त व्यक्तित्व : अखंड कृतित्व

ऋषभदेव एवं अष्टापद

जैन धर्म एवं साहित्य में धर्मचक्र का विशेष महत्व हैं। तीर्थंकरों की स्तुति में शकेन्द्र ने जो विशेषण और गुण सूचक वाक्य प्रयुक्त किये है उनमें **धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टीणं** अर्थात् महावीरादि तीर्थंकर श्रेष्ठ धर्म को चारों ओर फैलाने में धर्मचक्र के प्रवर्त्तक धर्म-चक्रवर्ती होते हैं। उनमें पहले अतिशय में धर्मचक्र का नाम आता है, अर्थात् तीर्थंकर चलते है तो उनके आगे आगे आकाश में देवता धर्मचक्र चलाते रहते हैं। अतः धर्मचक्र तीर्थंकरों का महान अतिशय है। अभिधान-चिंतामणी शब्दकोष के प्रथम खण्ड के ६१ वे श्लोक में धर्मचक्र प्रवर्तन किये जाने का उल्लेख किया गया है। प्राचीन समवायांग सूत्र में दस अतिशयों का वर्णन है, उसमें आकाशगत धर्मचक्र भी एक है। भगवान विहार करते है तब आकाश में देदीप्यमान धर्मचक्र चलता हैं। प्राचीन स्तोत्रों में इसका बड़ा महत्व बतलाया है। उसका ध्यान करने वाले साधक सर्वत्र अपराजित होते हैं —

"जस्सवर धम्मचक्कं दिणयरंबिव न भासुरच्छायं
नेएण पज्जलंतं गच्छइ पुरओ जिणिंदस्स ।।१९।।"

ॐ नमो भगवओ महइ महावीर वर्द्धमान सामिस्स जस्सवर धम्मचक्कं जलंतं गच्छइ आयासं पायालं, लोयाणं भूयाणं जूए वा रणे का रायंगणे वावारणे थंभणे मोहेण थंरणे स्तवसताणं अपराजिओ भवामि स्वाहा।

धर्मचक्र का प्रवर्तन कब से चालू हुआ, इस सम्बन्ध में आचार्य हेमचन्द्र के त्रिशष्टिश्लाका पुरुष चरित्र में महत्वपूर्ण उल्लेख मिलता

है। इसके अनुसार भगवान ऋषभदेव छद्मस्थ काल में अपने पुत्र महाराजा बाहुबली के प्रदेश में तक्षशिला वन में आये, उसकी सूचना वनरक्षक ने बाहुबली को दी तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ और वे भगवान को वंदन करने के लिये जोरों से तैयारी करने लगे। इस तैयारी में संध्या हो जाने से दूसरे दिन प्रातः काल वे अपने नगर से निकलकर जहाँ रात्रि में भगवान ऋषभदेव ध्यानस्थ ठहरे थे वहाँ पहुँचे। पर लाव लश्कर के साथ पहुँचने में देरी हो गयी और भगवान ऋषभदेव तो अप्रतिबद्ध विहारी थे अतः प्रातः होते ही अन्यत्र विहार कर गए, फलतः बाहुबली उनके दर्शन नहीं कर सके। मन में बड़ा दुःख हुआ कि मुझे भगवान के आगमन की सूचना मिलते ही आकर दर्शन कर लेना चाहिए था। अंत में जहाँ भगवान खड़े हुए थे वहाँ की जमीन पर भगवान के पद चिन्ह बने हुए थे, उन्हीं का दर्शन वन्दन करके संतोष करना पड़ा। पद चिन्हों की रक्षा करने के लिए धर्म चक्र बनवाया गया, सुवर्ण और रत्नमयी? हजार आरों वाला धर्मचक्र वहाँ स्थापित किया गया। बाहुबली ने धर्मचक्र और चरण चिन्हों की पूजा की। इस तरह चरण चिन्हों की पूजा की परम्परा शुरू हुई और पहला धर्मचक्र ऋषभदेव के छद्मस्थ काल में बनवाकर प्रतिष्ठित किया गया ।

अष्टोत्तरी तीर्थमाला (अंचलगच्छीय महेन्द्रसूरी रचिता) प्राकृत भाषा की एक महत्वपूर्ण रचना है। १११ गाथाओं की इस रचना में जैन तीर्थों का वर्णन है। उनमें से ५१वीं गाथा में अष्टापद उज्ज्यन्त, गजाग्रपद के बाद धर्मचक्र तीर्थ का उल्लेख है। गाथा ५६ से ५८वें तक में धर्मचक्र तीर्थ की उत्पत्ति का विवरण इस प्रकार दिया हुआ है।

तवाल सिलाए उसभो, वियाली आगम्म पडिम्म नुज्जणे।
जा बाहुबली पमाए, एईता विहरिनु भयवं ।।५६।।
तोतेहियं सोकारइ जिण पय गणंमि रयणमय पीढ़।

तदुवरि जोयण माणं रयण विणिम्मिय दंडे ।।५७।।
तस्सोवरि रयणमय, जोयण परिमण्डल पवर चक्कं ।
तं धम्मचक्कतित्थ, भवजल तिहि पवर बोहियं ।।५८।।

अंचलगच्छ पट्टावली के अनुसार इस प्राकृत तीर्थमाला के रचयिता महेन्द्र सूरि का जन्म संवत १२२८ दीक्षा १२३७ आचार्य पद १३०९ में हुआ था। वे आचार्य हेमचन्द्र के थोड़े समय बाद ही हुए। आचार्य हेमचन्द्र और महेन्द्रसूरि के लेखन का आधार आवश्यक चूर्णि था जिसमें धर्मचक्र तीर्थ की उत्पत्ति का उपर्युक्त वर्णन है। इसके अतिरिक्त प्राचीन जैन पुरातत्व से भी धर्मचक्र की मान्यता का समर्थन होता है। प्राचीनतम मथुरा के आयागपट्ट आदि में धर्मचक्र उत्कीर्णित है मध्यकाल में भी इसका अच्छा प्रचार रहा। अतः अनेक पाषाण एवं धातु की जैन मूर्तियों के आसन के बीच में धर्म चक्र खुदा मिलता है। अभिधान राजेन्द्र कोष के पृष्ठ २७१५ में धर्मचक्र संबंधी ग्रंथों के पाठ दिये हैं उसके अनुसार प्राचीनतम आचारांग की चूर्णि में 'तक्षशिलायां धर्मचक्र' आदि पाठ है जिसमें धर्मचक्र की स्थापना का तीर्थ तक्षशिला था, सिद्ध होता है। तीर्थकल्प में भी "तक्षशिलायां बाहुबलि विनिर्मितम् धर्मचक्र" पाठ है। आवश्यक चूर्णि में तीर्थंकर के लिये धम्मचक्कपट्टी लिखा है। अतः परम्परा निसंदेह काफी प्राचीन सिद्ध होती है।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष के भाग २ पृष्ठ ४७५ में दो श्लोक उद्धृत मिले उसमें हजार-हजार आरों वाले धर्मचक्र सुशोभित होते रहे थे। यक्षों के ऊँचे-ऊँचे मस्तक पर रखे हुए धर्मचक्र अलकृत हो रहे थे। (अगरचन्द नाहटा - धर्मचक्र तीर्थ उत्पत्ति और महिमा - कुशल निर्देश)

ऋषभदेव का प्रथम पारणा अक्षय तृतीया के दिन हुआ था। इसका स्पष्ट लेख आचार्य हेमचन्द्र सूरि द्वारा रचित त्रिषष्टि शलाका पुरुष में मिलता है।

आर्यांनार्येषु मौनेन, विहरन् भगवानपि।
संवत्सरं निराहारश्चिन्तयामासिवानिदम्।।२३८।।
प्रदीपा इव तैलेन, पादपा इव वारिणा।
आहारेणैव वर्तन्ते, शरीराणि शरीरिणाम् ।।२३९।।
स्वामी मनसि कृत्यैवं, भिक्षार्थं चलितस्ततः।
पुरं गजपुरं प्राप, पुरमण्डलमण्डनम्।।२४३।।
दृष्ट्वा स्वामिनमायान्तं, युवराजोऽपि तत्क्षणम्।
अघावत् पादचारेण, पत्तीनप्यतिलंघयन् ।।२७७।।
गृहांगणजुषो भर्तुर्लुठित्वा पादपंकजे।
श्रेयांसोऽमार्जयत् केशैर्भ्रमरभ्रमकारिभिः ।।२८०।।
ईदृशं क्व मया दृष्टं, लिंगमित्यभिचिन्तयन्।
विवेकशाखिनो बीजं, जातिस्मरणमाप सः ।।२८३।।
ततोविज्ञातनिर्दोषभिक्षादानविधिः स तु।
गृह्यतां कल्पनीयोऽयं, रस इत्यवदत् विभुम् ।।२९१।।
प्रभुरप्यंजलीकृत्य, पाणिपात्रमधारयत्।
उत्क्षिप्योत्क्षिप्य सोऽपीक्षुरसकुम्भानलोठयत्।।
राधशुक्ल तृतीयायां, दानमासीत्तदक्षयम्।
पर्वाक्षयतृतीयेति, ततोऽद्यापि प्रवर्तते ।।३०१।।

ऊपर लिखित श्लोकों में आचार्य हेमचन्द्र ने स्पष्टतः लिखा है कि संवतत्सर पर्यन्त भगवान ऋषभदेव मौन धारण किये हुए निराहार ही विभिन्न आर्य तथा अनार्य क्षेत्रों में विचरण करते रहे है। तदनन्तर उन्होने विचार किया कि जिस प्रकार दीपकों का अस्तित्व तेल पर और वृक्षों का अस्तित्व पानी पर निर्भर करता है, उसी प्रकार देहधारियों के शरीर भी आहार पर ही निर्भर करते है। यह विचार कर वे पुनः भिक्षार्थ प्रस्थित हुए और विभिन्न स्थलों में विचरण करते हुए अन्ततोगत्वा हस्तिनापुर पधारे। हस्तिनापुर में भी वे भिक्षार्थ घर-घर भ्रमण करने

लगे। अपने नगर में प्रभु का आगमन सुनते ही पुरवासी अपने सभी कार्यों को छोड़ प्रभु दर्शन के लिये उमड़ पड़े। हर्षविभोर हस्तिनापुर निवासी प्रभु चरणों पर लोटपोट हो उन्हें अपने-अपने घर को पवित्र करने के लिये प्रार्थना करने लगे। भगवान् ऋषभदेव भिक्षार्थ जिस-जिस घर में प्रवेश करते, वहीं कोई गृहस्वामी उन्हें स्नान-मज्जन-विलेपन कर सिंहासन पर विराजमान होने की प्रार्थना करता, कोई उनके समक्ष रत्नाभरणालंकार प्रस्तुत करता, कोई गज, रथ, अश्व आदि प्रस्तुत कर, उन पर बैठने की अनुनय-विनयपूर्वक प्रार्थना करता। सभी गृहस्वामियों ने अपने-अपने घर की अनमोल से अनमोल महार्ध्य वस्तुएँ तो प्रभु के समक्ष प्रस्तुत कीं किन्तु आहार प्रदान करने की विधि से अनभिज्ञ उन लोगों में से किसी ने भी प्रभु के समक्ष विशुद्ध आहार प्रस्तुत नहीं किया। इस प्रकार अनुक्रमशः प्रत्येक घर से विशुद्ध आहार न मिलने के कारण प्रभु निराहार ही लौटते रहे और मौन धारण किये हुए शान्त, दान्त भगवान् ऋषभदेव एक के पश्चात् दूसरे घर में प्रवेश करते एवं पुनः लौटते हुए आगे की ओर बढ़ रहे थे। राजप्रासाद के पास सुविशाल जनसमूह का कोलाहल सुनकर हस्तिनापुराधीश ने दौवारिक से कारण ज्ञात करने को कहा। प्रभु का आगमन सुन महाराज सोमप्रभ और युवराज श्रेयांसकुमार हर्षविभोर हो त्वरित गति से तत्काल प्रभु के सम्मुख पहुँचे। आदक्षिणा — प्रदक्षिणापूर्वक वन्दन-नमन और चरणों में लुण्ठन के पश्चात् हाथ जोड़े वे दोनों पिता पुत्र आदिनाथ की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखते ही रह गये। गहन अन्तस्थल में छुपी स्मृति से श्रेयांसकुमार को आभास हुआ कि उन्होंने प्रभु जैसा ही वेश पहले कभी कहीं न कहीं देखा है। उत्कट चिन्तन और कर्मों के क्षयोपशम से श्रेयांसकुमार को तत्काल जातिस्मरण ज्ञान हो गया। जातिस्मरण-ज्ञान के प्रभाव से उन्हें प्रभु के वज्रनाभादि भवों के साथ अपने पूर्वभवों का और मुनि को निर्दोष

आहार प्रदान करने की विधि का स्मरण हो गया। श्रेयांस ने तत्काल निर्दोष-विशुद्ध इक्षुरस का घड़ा उठाया और प्रभु ने निवेदन किया, हे आदि प्रभो! आदि तीर्थेश्वर! जन्म-जन्म के आपके इस दास के हाथ से यह निर्दोष कल्पनीय इक्षुरस ग्रहण कर इसे कृतकृत्य कीजिये।"

प्रभु ने करद्वयपुटकमयी अंजलि आगे की। श्रेयांस ने उत्कट श्रद्धा-भक्ति एवं भावनापूर्वक इक्षुरस प्रभु की अंजलि में उड़ेला। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव ने पारणा किया। देवों ने गगनमण्डल से पंच दिव्यों की वृष्टि की। अहो दानम्, अहो दानम्! के निर्घोषों, जयघोषों और दिव्य दुन्दुभि-निनादों से गगन गूंज उठा। दशों दिशाओं में हर्ष की लहरें सी व्याप्त हो गई। राध-शुक्ला अर्थात् वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन युवराज श्रेयांस ने भगवान् ऋषभदेव को प्रथम पारणक में इक्षुरस का यह अक्षय दान दिया। इसी कारण वैशाख शुक्ला तृतीया, का दिन अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध हुआ और वह अक्षय तृतीया का पर्व आज भी लोक में प्रचलित है।

अपभ्रंश भाषा के महाकवि पुष्प दंत द्वारा रचित महापुराण की रिसहकेवणाणुत्पत्ती नामक नवम सन्धि पृ० १४८-१४९ में भी भगवान् ऋषभदेव के प्रथम पारणे का उल्लेख मिलता है।

ता दुंदुहि खेण भरियं दिसावसाणं।
भणिया सुरवरेहिं भो साहु साहु दाणं ।।१।।
पंचवण्णमाणिक्कमिसिट्ठी, घरप्रंगणि वसुहार वरिट्ठी।
णं दीसइ ससिरविबिंबच्छिहि, कंठभट्ठ कंठिय णहलच्छिहि।
मोहबद्धणवपेम्महिरी विव, सग्ग सरोयहु णालसिरी विव।
रयणसमुज्जलवरगयपंति व, दाणमहातरुहलसंपत्ति व।
सेयंसहु घणएण णिउंजिय, उक्कहिं उडमाला इव पंजिय।
पूरियसंवच्छर उववासें, अक्खयदाणु भणिउं परमेसें।
तहु दिवसहु अत्थेण समायउ, अक्खयतइय णाउं संजायउ।

घरु जायवि भरहें अहिणंदिउ, पढ़मु दाणतित्थंकरु वंदिउ।
अहियं पक्ख तिण्ण सविसेसें, किंचूणे दिण कहिय जिणेसें,
भोयणवित्ती लहीय तमणासे, दाणतित्थु घोसिउ देवीसें।

महाकवि पुष्पदन्त ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि ज्यों ही श्रेयांसकुमार ने अपने राजप्रासाद में भगवान ऋषभदेव को इक्षुरस से पारणा करवाया त्यों ही दुन्दुभियों के घोष से दशों दिशाएँ पूरित हो गई। देवों ने अहो दानम्, अहो दानम् एवं साधु-साधु के निर्घोष पुनः पुनः किये। श्रेयांस के प्रासाद के प्रांगण में दिव्य वसुधारा की ऐसी प्रबल वृष्टि हुई कि चारों ओर रत्नों की विशाल राशि दृष्टिगोचर होने लगी। प्रभु का संवत्सर तप पूर्ण हुआ और कुछ दिन कम साढ़े तेरह मास के पश्चात् भोजन वृत्ति प्राप्त होने पर भगवान् ने प्रथम तप का पारणा किया। इस दान को अक्षयदान की संज्ञा दी गई। उसी दिन से प्रभु के पारणे के दिन का नाम अक्षय तृतीया प्रचलित हुआ। भरत चक्रवर्ती ने श्रेयांसकुमार के घर जाकर उनका अभिनन्दन एवं सम्मान करते हुए कहा, वत्स! तुम इस अवसर्पिणीकाल के दानतीर्थ के प्रथम संस्थापक हो, अतः तुम्हें प्रणाम है।

इन सब उल्लेखों से यह सिद्ध होता है कि यह मान्यता प्राचीनकाल से चली आ रही है कि भगवान् ऋषभदेव का प्रथम पारणा अक्षय तृतीया के दिन हुआ था। अक्षय तृतीया का पर्व प्रभु के प्रथम पारणे के समय श्रेयांसकुमार द्वारा दिये गये प्रथम अक्षय दान से सम्बन्धित है। वाचस्पत्यभिधान के श्लोक में भी अक्षय तृतीया को दान का उल्लेख मिलता है।

वैशाखमासि राजेन्द्र, शुक्लपक्षे तृतीयका।
अक्षया सा तिथि प्रोक्ता, कृतिकारोहिणीयुता।।
तस्यां दानादिकं सर्वमक्षयं समुदाहृतम्।........

प्रव्रज्या ग्रहण करने के १००० वर्ष तक विचरने के बाद ऋषभदेव पुरिमताल नगर के बाहर शकट मुख नामक उद्यान में आये और

फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन अष्टम तप के साथ दिन के पूर्व भाग में, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में प्रभु को एक वट वृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। केवलज्ञान द्वारा ज्ञान की पूर्ण ज्योति प्राप्त कर लेने के पश्चात् समवसरण में प्रभु ने प्रथम देशना दी। समवसरण का अर्थ अभिधान राजेन्द्र कोश के अनुसार **"सम्यग् एकीभावेन अवसरणमेकत्र गमनं मेलापकः समवसरणम्"** अर्थात् अच्छी तरह से एक स्थान पर मिलना, साधु-साध्वी आदि संघ का एक संग मिलना एवं व्याख्यान सभा। समवसरण की रचना के विषय में जैन शास्त्रों में उल्लेख है कि वहाँ देवेन्द्र स्वयं आते है तथा तीन प्राकारों वाले समवसरण की रचना करते है जिसकी एक निश्चित विधि होती है।

माता मरुदेवी अपने पुत्र ऋषभदेव के दर्शन हेतु व्याकुल हो रही थी। प्रव्रज्या के बाद अपने प्रिय पुत्र को एक बार भी नहीं देख पायी थी। भगवान् ऋषभदेव को केवलज्ञान प्राप्त होने का शुभ संदेश जब सम्राट भरत ने सुना तो वे मरुदेवी को लेकर ऋषभदेव के पास जाते हैं। समवसरण में पहुँचकर माता मरुदेवी ने जब ऋषभदेव को देखा तो सोचने लगी — मैं तो सोचती थी कि मेरा पुत्र कष्टों में होगा लेकिन वह तो अनिर्वचनीय आनन्दसागर में झूल रहा है। इस प्रकार विचार करते करते उनके चिन्तन का प्रवाह बदल गया वे आर्तध्यान से शुक्ल ध्यान में आरुण हुई और कुछ ही क्षणों में ज्ञान, दर्शन, अन्तराय और मोह के बन्धन को दूर कर केवल ज्ञानी बन गयी और गजारुढ़ स्थिति में ही वे मुक्त हो गईं। इस सन्दर्भ में त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र में लिखा है–

करिस्कन्धाधिरुढ़ैव, स्वामिनि मरुदेव्यथ।
अन्तकृत्केवलित्वेन, प्रवेदे पदमव्ययम्।।

— त्रिषष्टि श. पु. चारित्रम्, १।३।५३०

आवश्यक चूर्णिकार के अनुसार क्षत्र भायण्डादि अतिशय देखकर मरुदेवी को केवल ज्ञान हुआ। आयु का अवसानकाल सन्निकट होने के कारण कुछ ही समय में शेष चार अघाती कर्मों को समूल नष्टकर गजारुढ़ स्थिति में सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गई।

भगवतो य छत्तारिच्छत्तं पेच्छंतीए चेव केवलनाणं उप्पन्नं, तं समयं च णं

आयुं खुट्टं सिद्ध देवेहिं य से पूया कता..................।

— आवश्यक चूर्णि (जिनदास), पृ. १८१

इस प्रकार इस अवसर्पिणी काल में सिद्ध होने वाले जीवों में माता मरुदेवी का प्रथम स्थान है।

(आचार्य हस्तीमल जी महाराज–जैन धर्म का इतिहास)

आवश्यक निर्युक्ति में उल्लेख है कि— भगवान् ऋषभदेव की फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन प्रथम देशना हुई ।

फग्गुणबहुले इक्कारसीई अह अट्ठमेणभत्तेण।

उप्पन्नंमि अणंते महव्वया पंच पन्नवए।।

— आवश्यक निर्युक्ति गाथा - ३४०

फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन शुद्ध एवं चारित्र धर्म का निरूपण करते हुए रात्रि भोज विमरण सहित पंच महाव्रत धर्म का उपदेश दिया। तत्पश्चात् साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूपी धर्म तीर्थ की स्थापना कर भगवान् प्रथम तीर्थंकर बने। उनके उपदेशों को सुनकर भरत के ५०० पुत्रों और ७०० पौत्र दीक्षा लेकर साधु बनें और ब्राह्मी आदि ५०० स्त्रियां साध्वी बनी। ऋषभसेन ने भगवान् के पास प्रव्रज्या ग्रहण की और १४ पूर्व का ज्ञान प्राप्त किया। भगवान के ८४ गणधर हुए जिनमें ऋषभसेन पहले गणधर बने। कहीं-कहीं पुण्डरिक नाम का उल्लेख भी मिलता है परन्तु समवायांग सूत्र में ऋषभसेन

नाम का उल्लेख है। आवश्यक चूर्णी में भी ऋषभसेन नाम का ही उल्लेख मिलता है।

तत्थ उसभसेणो णाम भरहस्स रन्नो पुत्तो सो धम्म सोऊण पव्वइतो तेण तिहिं

पुच्छाहिं चोद्दसपुव्वाइं गहिताईं उप्पन्ने विगते धुते, तत्थ बम्भीवि पव्वइया। **— आ. चूर्णि पृ. १८२**

भगवान् ऋषभदेव द्वारा स्थापित किये गये धर्म तीर्थ की शरण में आकर अनादिकाल से जन्म-मरण के चक्र में फँसे अनेकानेक भव्य प्राणियों ने आठों कर्मों को क्षय करके मुक्ति प्राप्त की। भगवान् ऋषभदेव ने एक ऐसी सुखद सुन्दर मानव संस्कृति का आरम्भ किया जो सह आस्तित्व, विश्व वन्धुत्व और लोक कल्याण आदि गुणों से ओत-प्रोत और प्राणि मात्र के लिये सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में कल्याणकारी थी। इसीलिये सभी धर्मों के प्राचीन ग्रन्थों में भगवान् ऋषभदेव का प्रमुख स्थान है। वेदों, पुराणों, मनुस्मृति, बौद्ध ग्रन्थों आदि में ऋषभदेव का वर्णन और उनकी प्रशस्ति में श्लोक मिलते है। महाकवि सूरदास के शब्दों में —

बहुरि रिसभ बड़े जब भये नाभि राज देवनको गये।
रिसभ राज परजा सुख पायो जस ताको सब जग में छायो।।

— सूरसागर

ऋषभदेव की शिष्य संपदा के विषय में कल्पसूत्र में लिखा है कि **"उसभस्स णं अरहओ को सलियस्स चउरासीइं गणा, चउरासीइं गणहरा होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोस लियस्स उस भसेण - पामोक्खाओ चउरासीइं समण साहस्सीओ उक्कोसिया समण संपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स बंभी - सुंदरी पामोक्खाणं अज्जियाणं तिन्नि सय साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया होत्था।"**

अर्हत ऋषभ के चौरासी गण और चौरासी गणधर थे। उनके संघ में चौरासी हजार श्रमण थे जिनमें वृषभसेन प्रमुख थे। तीन लाख श्रमणियां थी जिनमें ब्राह्मी और सुन्दरी प्रमुख थी।

इक्ष्वाकु कुल और काश्यप गोत्र में उत्पन्न ऋषभदेव इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर माने जाते है। इन्हें सभ्यता और संस्कृति का आदि पुरुष कहा जाता है। त्रिशष्टि शलाका पुरुष चरित्र में इनके बारह पूर्वभवों का वर्णन भी है। वैदिक परम्परा में वेदों, पुराणों में भी ऋषभदेव का वर्णन अनेक स्थानों पर मिलता है। पुरातात्विक स्रोतों से भी ऋषभदेव के बारे में सूचनाएं मिलती है। अब तक की सबसे प्राचीन प्राप्त मूर्ति जो हड़प्पा और मोहनजोदड़ों में मिली है उसके विषय में T.N. Ramchandra (Joint director General of Indian Archeology) ने स्पष्ट लिखा है— "we are perhaps recognising in Harappa statuette a fullfledged Jain Tirthankara in the Characteristic pose of physical abandon (Kayotsarga)"

"The name Rsabha means bull and the bull is the emblem of Jain Rishabha "Therefore it is possible that the figures of the yogi with bull on the Indus seals represents the Mahayogi Rishabh." (Modern Review Aug. 1932).

"The images of Rsabha with Trishula- like decoration on the head in a developed artistic shape are also found at a later period. Thus the figures on the Mohanjodaro seals vouchsafe the prevalence of the religion and worship of Jain Rsabha at the early period on the western coast of the country."

According to Jambudvipa Prajnapati, "Rsabhadeva was the first tribal leader to make invention of sword by

smelting iron ore and to interduce alphabetic writing and its utilization for literary records. The age of Nabhi and his son Rsabha was the age of transition from the upper stage of Kulakarism into the dawn of civilization."

"The picture of the evolution of mankind through the infancy of the human race and kulakarism to the dawn of civilization as depicted in Jain Agamas. Compares well with the picture of the evolution of mankind through savegery and barbarism to the begining of civilization as sketched by F Engels."

"The Harappa statuette is a male torso in nude form which resembles the torso found in Lohanipur, Patna". Historian K. P. Jayaswal declared that ' It is the oldest Jain image yet found in India........ In the face of similarities the nude torso of Harappa seems to represent an image of a Jina probably of Jain Rsabha."

इसी सन्दर्भ में प्रो० एस. आर. बनर्जी ने लिखा है— "Jainism is a very old religion. There were 24 Tirthankars in Jainism. The first was known as Adinatha or Rsabhadeva and the 24th Tirthankara was Bhagavan Mahavira..........If Lord Mahavira is attributed to the 6th century B.C., surely Rsabhadeva, the 1st Tirthankara, must have belonged to a much earlier period. It is to be noted that the name Rsabha is found in the Rgveda, which dates back to 1500 B.C." (Understanding Jain Religion in a Historical Perspective--- Dr. Satya Ranjan Banerjee)

जैन धर्म में तीर्थंकर को धर्म तीर्थ का संस्थापक माना गया है। 'नमोत्थुणं' नामक प्राचीन प्राकृत स्तोत्र में तीर्थंकर को धर्म का प्रारम्भ करने वाला, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाला, धर्म का प्रदाता, धर्म का उपदेशक, धर्म का नेता, धर्म मार्ग का सारथी और धर्म चक्रवर्ती कहा गया है। **नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं, तित्थयगराणं, सयंसंबुद्धाणं........ पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरीयाणं पुरिसवर-गंधहत्थीणं। लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहियाणं, लोक-पईवाणं, लोग-पज्जोयगरांणं........ धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्टीणं .... जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं.......।** (कल्पसूत्र)

जैनधर्म में तीर्थंकर का कार्य है—स्वयं सत्य का साक्षात्कार करना और लोकमंगल के लिए उस सत्यमार्ग या सम्यक् मार्ग का प्रवर्तन करना है। वे धर्म-मार्ग के उपदेष्टा और धर्म-मार्ग पर चलने वालों के मार्गदर्शक हैं। उनके जीवन का लक्ष्य होता है स्वयं को संसार चक्र से मुक्त करना, आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त करना और दूसरे प्राणियों को भी इस मुक्ति और आध्यात्मिक पूर्णता के लिये प्रेरित करना और उनके साधना में सहयोग प्रदान करना। तीर्थंकरों को संसार समुद्र से पार होने वाला और दूसरों को पार कराने वाला कहा गया है। वे पुरुषोत्तम हैं, उन्हें सिंह के समान शूरवीर, पुण्डरीक कमल के समान वरेण्य और गन्धहस्ती के समान श्रेष्ठ माना गया है। वे लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक के हितकर्ता, दीपक के समान लोक को प्रकाशित करने वाले कहे गये हैं।

तीर्थंकर शब्द का प्रयोग आचारांग, उत्तराध्ययन, समवायांग, स्थानांग एवं भगवती आदि में मिलता है। संस्कृति में तीर्थ शब्द का अर्थ घाट या नदी है। अतः जो किनारे लगाये वह तीर्थ है। सागर

रूपी संसार से पार लगाने के लिये धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले को तीर्थंकर कहते है। बौद्ध ग्रन्थ दिघ्निकाय में छः तीर्थंकरों का उल्लेख मिलता है। (१) पूर्ण काश्यप (२) मंक्खलि गोशाल (३) अजित केश कम्बल (४) प्रबुद्ध कात्यायन (५) संजयबेलटिट्ठपुत्र (६) निगण्ठनातपुत्र। विशेषावश्यक भाष्य में तीर्थ की व्याख्या करते हुए बतलाया गया है कि जिसके द्वारा पार हुआ जाता है उसको तीर्थ कहते है। यहाँ तीर्थ के चार भाग बताये है। तीर्थ नाम से संबोधित किये जाने वाले स्थान **'नाम तीर्थ'** कहलाते है। जिन स्थानों पर भव्य आत्माओं का जन्म, मुक्ति आदि होती है और उनकी स्मृति में मन्दिर, प्रतिमा आदि स्थापित किये जाते हैं वे **'स्थापना तीर्थ'** कहलाते हैं। जल में डूबते हुए व्यक्ति को पार कराने वाले, मनुष्य की पिपासा को शान्त करने वाले और मनुष्य शरीर के मल को दूर करने वाले **'द्रव्य तीर्थ'** कहलाते हैं, जिनके द्वारा मनुष्य के क्रोध आदि मानसिक विकार दूर होते हैं तथा व्यक्ति भवसागर से पार होता है, वह निर्ग्रन्थ प्रवचन **'भावतीर्थ'** कहा जाता है।

तीर्थ हर धर्म का केन्द्र स्थल तथा श्रद्धा स्थल हैं। तीर्थ वह स्थान है जहाँ किसी महापुरुष द्वारा साधना की गयी हो या मुक्ति प्राप्त की गयी हो। वह स्थान उस विलक्षण व्यक्तित्व की चेतना की उर्जा से उक्त हो जाता है तथा वहां की चेतना की सघनता स्वमेव उस स्थान को तीर्थ का रूप प्रदान कर देती है। जहाँ लोग आकर दर्शन करते है साधना करते है क्योंकि वहां के वातावरण में तीर्थंकरो और महापुरुषों के चैतन्य के परमाणु व्याप्त होते है। उनकी चेतना की ज्योति का घनत्व आत्म साधक की साधना की क्षमता को शीघ्र ही बढ़ा देता है। महोपाध्याय चन्द्रप्रभजी के शब्दों में "तीर्थ में प्रवहमान चैतन्य धारा स्वतः में प्रवहमान होने लगती है। तीर्थ हमारी निष्ठा एवं

श्रद्धा के सर्वोपरि माध्यम है। तीर्थ ही वे माध्यम है जिनके द्वारा हम अतीत के आध्यात्म में झांक सकते है। तीर्थ सदा से हमारे सांस्कृतिक जीवन की धूरी रहे है। सारी की सारी नैतिक रक्त नाड़ियां यहीं से होकर गुजरती है और हमें संस्कृति तथा धर्म के तल पर नया जीवन नयी उमंग प्रदान करती है। यहीं से हम उत्साह की मंद पड़ती लौ के लिये नयी ज्योति पाते है। संक्षेप में तीर्थ हमारे आत्म कला के सर्वोकृष्ट साधन हैं" (महोपाध्याय श्रीचन्द्रप्रभ सागरजी) प्राचीन शास्त्रों से यह पता चलता है कि तीर्थंकर की अवधारणा का विकास अरिहंत की अवधारणा से हुआ है। उत्तराध्ययन में सबसे पहले हमें तित्थयर शब्द मिलता है। तीर्थंकर के लिये बुद्ध शब्द का प्रयोग जैन आगमों में तथा बौद्ध पिटको में बुद्धों का तीर्थंकर के रूप में प्रयोग मिलता है।

तीर्थ स्थानों में व्यक्ति सब चिंताओं से मुक्त हो भाव विभोर हो भक्ति में लीन हो जाता है। जितने समय तक वहाँ रहता है एक विशेष सुख शान्ति का अनुभव करता है। तीर्थों की गरिमा मन्दिरों से अधिक है। जैन धर्म में २४ तीर्थंकरो की मान्यता है। महाभारत और पुराणों में तीर्थ यात्रा के महत्व को बतलाते हुए यज्ञों की तुलना में श्रेष्ठ बताया गया है। बौद्ध परम्परा में भी बुद्ध के जन्म, ज्ञान, धर्म चक्र प्रवर्तन और निर्वाण इन चार स्थानों को पवित्र मानकर यहाँ यात्रा करने का निर्देश मिलता है। चीनी यात्री फाह्यान ह्वेनसांग, इत्सिन आदि बौद्ध तीर्थों की यात्रा हेतु भारत आये थे। तीर्थंकरों मुनियों ऋषियों की चैतन्य विद्युत धारा से प्रवाहित तीर्थों में चेतना की ज्योति अखण्ड रहती है।

जैन शास्त्रों में तीर्थंकरों के निर्वाण स्थल, जन्म स्थल, तथा अन्य कल्याण भूमियों को तीर्थ के रूप में मान्यता दी गयी है तथा उन स्थानों पर बनाये गये चैत्यों स्तूपों तथा वहाँ पर जाकर महोत्सव मनाने का वर्णन आगम साहित्य में उपलब्ध मिलता है। आचारंग निर्युक्त, निशीथ चूर्णी, व्यवहार चूर्णी, महनिशीथ, श्री पंचाशक प्रकरणम्,

हरिभद्र सुरि सारावली प्रकीर्णक, सकल तीर्थ स्तोत्र, अष्टोत्तरी तीर्थमाला, प्रबन्धग्रन्थों तथा जिनप्रभ सूरि रचित विविध तीर्थकल्प आदि ग्रन्थों में तीर्थों, तीर्थ यात्री संघो द्वारा तीर्थों की यात्रा का उल्लेख मिलता है तथा उनकी महत्वत्ता का भी वर्णन मिलता है।

तीर्थकरों द्वारा स्थापित साधू-साध्वी, श्रावक-श्राविका का चतुर्विध संघ (तिथ्यं पुण चाउवन्ने समणसंघे, समणा, समणीओ, सावया सावियाओ — भगवती सूत्र शतक २० उ० ८ सूत्र ७४) भी संसार रूपी समुद्र से पार कराने वाला भाव तीर्थ कहा जाता है। इस प्रकार के चतुर्विध संघ के निर्माण का वर्णन प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर से हमें मिलता है। जैन परम्परा में तीर्थ शब्द के अर्थ का ऐतिहासिक विकास क्रम देखने को मिलता है। यहाँ तीर्थ शब्द को अध्यात्मिक अर्थ प्रदान कर अध्यात्मिक साधना मार्ग को तथा उस साधना के अनुपालन करने वाले साधकों के संघ को तीर्थ के रूप में स्वीकार किया गया है। धार्मिक क्रियाओं में चतुर्विध श्रीसंघ की मान्यता तथा चतुर्विध श्री संघ द्वारा तीर्थयात्रा को एक धार्मिक क्रिया के रूप में मान्यता दी गयी है।

ऋग्वेद में तीर्थों का वर्णन नहीं है क्यों कि प्रारम्भ में वैदिक लोग मन्दिर और मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं रखते थे। लेकिन श्रमण संस्कृति के प्रभाव के फलस्वरूप उपनिषदों, पुराणों, महाभारत आदि में तीर्थ यात्राओं की उच्चकोटि की महत्ता मानी गयी और इनका वर्णन किया गया। इन तीर्थ यात्राओं की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार थी। (१) ये यात्राएँ किसी विशेष पूजा पद्यति के अनुयायी सम्मिलित होकर करते थे। (२) इनकी यात्रा का लक्ष्य कोई प्रमुख तीर्थ स्थान रहता था। (३) इन यात्रा में संतों और मुनियों के समागम को प्रत्येक धर्म में महत्ता दी गयी। (४) इन संघों के यात्री मार्ग में धर्म प्रभावना का कार्य निरन्तर करते थे। दान और पुण्य का

बड़ा महत्व समझा जाता था। (५) यात्रा के मार्ग में पड़ने वाले जीर्ण शीर्ण मन्दिरों की व्यवस्था की जाती थी। निर्धन वर्ग को सहायता प्रदान करना एवं मार्ग में विशेष सुविधाओं की स्थापना करना अति पुण्य का कार्य समझा जाता था। (६) इस प्रकार की यात्राओं का व्यय एक व्यक्ति या कुछ व्यक्ति सम्मिलित हो उठते थे। (७) मार्ग में पड़ने वाले राज्यों के शासक भी संघों के यात्रियों की व्यवस्था करते थे तथा यात्री संघों द्वारा शासकों को भेट दी जाती थी। जिसके बदले ये शासक विभिन्न प्रकार की सुविधाएं यात्रियों को उपलब्ध कराते थे। संतों का प्रयास रहता था कि शासक को धार्मिक सिद्धान्तों की ओर प्रेरित करे। इस प्रकार हम देखते है कि तीर्थ और तीर्थ यात्रा संघों का महत्व धार्मिक तीर्थों की देखभाल और पुनरुद्धार के लिये, विभिन्न जातियों भाषा-भाषियों से सम्पर्क स्थापित करने के लिये, मानव जीवन के श्रेष्टतम मूल्यों के प्रसार के लिये, देश के विभिन्न भागों की जानकारी एवं नजदीकी सम्बन्ध स्थापित करने के लिये, राजकीय संरक्षण के लिये तथा शासकों में धर्म प्रचार के लिये आवश्यक बना रहा।

तीर्थंकरों का जन्म स्वयं के कल्याण के लिये ही नहीं अपितु जगत के कल्याण के लिये होता है। अतः उनके जीवन के विशिष्ट मंगल दिनों कों कल्याणक दिन कहा जाता है। जैन परम्परा में तीर्थंकरों के पंच कल्याणक माने जाते है। **पंच महाकल्लाणा सव्वेसिं हवंति नियमेण। - (पंचासक-हरिभद्र ४२४), जस्स कम्ममुदएण जीवो पंचमहाकल्लाणाणि पाविदूण तित्थ दुवालसंगं कुणदि तं तित्थयरणाम।** — (धवला १३ ।५, १०१ ।३६६ ।६, गोम्मटसार, जीवकाण्ड, टीका ३८१ ।६)

ये पंच कल्याणक दिन निम्नलिखित हैं—

गर्भकल्याणक— तीर्थंकर जब भी माता के गर्भ में अवतरित होते हैं तब श्वेताम्बर परंपरा के अनुसार माता १४ और दिगम्बर

परंपरा के अनुसार १६ स्वप्न देखती है तथा देवता और मनुष्य मिलकर उनके गर्भावतरण का महोत्सव मनाते हैं।

जन्मकल्याणक— जैन मान्यतानुसार जब तीर्थंकर का जन्म होता है, तब स्वर्ग के देव और इन्द्र पृथ्वी पर आकर तीर्थंकर का जन्म कल्याणक महोत्सव मनाते हैं और मेरु पर्वत पर ले जाकर वहां उनका जन्माभिषेक करते हैं।

दीक्षाकल्याणक—तीर्थंकर के दीक्षाकाल के उपस्थित होने के पूर्व लोकान्तिक देव उनसे प्रव्रज्या लेने की प्रार्थना करते हैं। वे एक वर्ष तक करोड़ों स्वर्ण मुद्राओं का दान करते हैं। दीक्षा तिथि के दिन देवेन्द्र अपने देवमंडल के साथ आकर उनका अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाते हैं। वे विशेष पालकी में आरूढ़ होकर वनखण्ड की ओर जाते हैं जहाँ अपने वस्त्राभूषण का त्यागकर तथा पंचमुष्ठिलोच कर दीक्षित हो जाते हैं। नियम यह है कि तीर्थंकर स्वयं ही दीक्षित होता है किसी गुरु के समीप नहीं।

कैवल्यकल्याणक— तीर्थंकर जब अपनी साधना द्वारा कैवल्य ज्ञान प्राप्त करते हैं उस समय भी स्वर्ग से इन्द्र और देवमंडल आकर कैवल्य महोत्सव मनाते हैं। उस समय देवता तीर्थंकर की धर्म सभा के लिये समवसरण की रचना करते हैं।

निर्वाणकल्याणक—तीर्थंकर के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर देवों द्वारा उनका दाह संस्कार कर परिनिर्वाणोत्सव मनाया जाता है।

आरम्भिक जैन आगम साहित्य में सिद्धान्तों पर महत्व दिया गया है तीर्थों पर कम। यहां सबसे पूर्व कल्याणकों को तीर्थ के रूप में बताया गया है। गर्भ (च्यवन) जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान, निर्वाण। जिसमें निर्वाण स्थल का महत्व ज्यादा है जैन साहित्य में पाँच तीर्थों की महिमा का विशेष वर्णन मिलता है— **"आबू, अष्टापद, गिरिनार,**

सम्मेत शिखर, शत्रुञ्जय सार। ये पाँचे उत्तम ठाम, सिद्धि गया तेने करूँ प्रणाम।"

निर्वाण स्थलों के विषय में रवि सेन ने पद्‌मपुराण में लिखा है कि "Many are the great souls who conquered their passions and attain release in times long passed; though these great souls have now vanished from our sight, we can still see the places that they Sanctified by their glorious acts."

आचार्य पूज्यपाद ने निर्वाण भक्ति में लिखा हैं—

"Just as cakes become sweet when they are coaled with sugar frosting so do places in this world become holy and pure when a Saint abides in them" (Pujyapada — निर्वाण भक्ति) ।

जब मनुष्यों का तीर्थों में आवागमन अवरुद्ध हो जाता है राजनैतिक या भौगोलिक कारणों से तो अपने पहुंच के क्षेत्र में ही उस तीर्थ की यादगार प्रतीक बनाकर पूजा करते है। अष्टापद जो प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की निर्वाणभूमि है, उसके विषय में भी ऐसा ही हुआ है। लेकिन आज जो साहित्यिक स्रोत हमारे पास है उनसे हमें अष्टापद की जानकारी मिलती है जिसके आधार पर अष्टापद की अवस्थिति का पता चल सकता है।

आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का निर्वाण अष्टापद पर हुआ था जिसका विवरण कल्पसूत्र में हमें मिलता है— **"चउरासीइं पुव्वसय - सहस्साइं सिव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जाउज—णाम—गोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए सुसम—दुस्समाए समाए बहु बिइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्ध नवमेहिं य मासेहिं सेसेहिं जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे, माह बहुले, तस्स णं माह बहुलस्स तेरसी पक्खेणं उप्पिं**

अट्ठावय सेल-सिहरंसि दसहिं अणगार - सहर-सेहिं सिद्धिं चोद्दसमेण भत्तेण अपाणएणं अभिइणा नक्खत्तेणं जोगभुवा गएणं पुव्वण्ह-काल-समयंसि संपलियंक-निसन्ने कालगए विइक्कंते जाव सव्व-दुक्ख-पहीणे।।१९९।।"

चौरासी लाख पूर्व वर्ष की आयु पूरी होने पर उनके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मों का क्षय हो गया। उस समय वर्तमान अवसर्पिणी के सुषम-दुषम नामक तीसरे आरेके बीत जाने में तीन वर्ष साढ़े आठ महीने बाकी बचे थे। हेमन्त ऋतु का तीसरा महीना और पाँचवा पक्ष चल रहा था। माघ कृष्ण तेरस के दिन अष्टापद पर्वत के शिखर पर दोपहर से पूर्व ऋषभदेव १० हजार श्रमणों के साथ जलरहित चतुर्दश भक्त (छह उपवास) तप का पालन करते हुए पर्यंकासन में ध्यान मग्न बैठे थे। तब अभिजित नक्षत्र का योग आने पर वे काल धर्म को प्राप्त हुए। समस्त दुःखों से पूर्णतया मुक्त हो गये।

जैन परम्परा के अनुसार भगवान् ऋषभदेव ने सर्वज्ञ होने के पश्चात् आर्यावर्त्त के समस्त देशों में विहार किया, भव्य जीवों को धार्मिक देशना दी और आयु के अन्त में अष्टापद (कैलाश पर्वत) पहुँचे। वहाँ पहुंचकर योगनिरोध किया और शेष कर्मों का क्षय करके माघ कृष्णा चतुर्दशी के दिन अक्षय शिवगति (मोक्ष) प्राप्त की।

भगवान् ऋषभदेव ने अष्टापद (कैलाश) में जिस दिन शिवगति प्राप्त की उस दिन समस्त साधु-संघ ने दिन को उपवास तथा रात्रि को जागरण करके शिवगति प्राप्त भगवान् की आराधना की, जिसके फलस्वरूप यह तिथि रात्रि **शिवरात्रि** के नाम से प्रसिद्ध हुई।

उत्तर प्रान्तीय जैनेत्तर वर्ग में प्रस्तुत शिवरात्रि पर्व फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को माना जाता है। उत्तर तथा दक्षिण देशीय पंचागों में मौलिक भेद इसका मूल कारण है। उत्तरप्रान्त में मास का प्रारम्भ

कृष्ण-पक्ष से माना जाता है और दक्षिण में शुक्ल-पक्ष से। प्राचीन मान्यता भी यही है। जैनेतर साहित्य में चतुर्दशी के दिन ही शिवरात्रि का उल्लेख मिलता है। ईशान संहिता में लिखा है—

माघे कृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि।
शिवलिंगतयोद्‌भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः।

प्रस्तुत उद्धरण में जहाँ इस तथ्य का संकेत है कि माघकृष्णा चतुर्दशी को ही शिवरात्रि मान्य किया जाना चाहिए, वहाँ उसकी मान्यतामूलक ऐतिहासिक कारण का भी निर्देश है कि उक्त तिथि की महानिशा में कोटि सूर्य प्रभोपम भगवान् आदिदेव (वृषभनाथ) शिवरात्रि प्राप्त हो जाने से **शिव** इस लिंग (चिह्न) से प्रकट हुए-अर्थात् जो शिव पद प्राप्त होने से पहले आदिदेव कहे जाते थे, वे अव शिव पद प्राप्त हो जाने से शिव कहलाने लगे।

उत्तर तथा दक्षिण प्राप्त की यह विभिन्नता केवल कृष्ण-पक्ष में ही रहती है, पर शुक्ल-पक्ष के सम्बन्ध में दोनों ही एक मत है। जब उत्तर भारत में फाल्गुन कृष्णपक्ष चालू होगा तब दक्षिण भारत का वह माघ कृष्ण-पक्ष कहा जायगा। जैनपुराणों के प्रणेता प्राय दक्षिण भारतीय जैनाचार्य रहे हैं, अतः उनके द्वारा उल्लिखित माघकृष्ण चतुर्दशी उत्तर भारतीय जन की फाल्गुन कृष्णा-चतुर्दशी ही हो जाती है। कालमाधवीय नागर खण्ड में प्रस्तुत माघवैषम्य का निम्न प्रकार समन्वय किया गया है।

माघ मासस्य शेषे या प्रथमे फाल्गुणस्य च।
कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रिः प्रकीर्तिता।

अर्थात् दक्षिणात्य जन के माघ मास के शेष अथवा अन्तिम पक्ष की और उत्तरप्रांतीय जन के फाल्गुन के प्रथम मास की कृष्ण चतुर्दशी **शिवरात्रि** कही गई है। (ऋषभदेव तथा शिव सम्बन्धी प्राच्य मान्यताएँ)

इस प्रकार वैदिक साहित्य में माघ कृष्णा चतुर्दशी के दिन आदि देव का शिव लिंग के रूप में उद्भव होना माना गया है और भगवान् आदिनाथ के शिव पद प्राप्ति का इससे साम्य प्रतीत होता है अतः यह सम्भव है कि भगवान् ऋषभदेव की निषद्या (चिता स्थल) पर जो स्तूप का निर्माण किया गया वहीं आगे चलकर स्तूपाकार चिह्न शिवलिंग के रूप में लोक में प्रचलित हो गया है ।

भगवान् ऋषभदेव का निर्वाण होते ही सौधर्मेन्द्र शक आदि ६४ इन्द्रों के आसन चलायमान हुए। वे सब इन्द्र अपने-अपने विशाल देव परिवार और अद्भुत दिव्य ऋद्धि के साथ अष्टापद पर्वत के शिखर पर आये। देवराज शक्र की आज्ञा से देवों ने तीन चिताओं और तीन शिविकाओं का निर्माण किया। शक ने क्षीरोदक से प्रभु के पार्थिव शरीर को और दूसरे देवों ने गणधरों तथा प्रभु के शेष अन्तेवासियों के शरीरों को क्षीरोदक से स्नान करवाया। उन पर गोशीर्ष चन्दन का विलेपन किया गया। शक ने प्रभु के और देवों ने गणधरों तथा साधुओं के पार्थिव शरीरों को क्रमशः तीन अतीव सुन्दर शिविकाओं में रखा। जय जय नन्दा, जय जय भद्दा आदि जयघोषों और दिव्य देव वाद्यों की तुमुल ध्वनि के साथ इन्द्रों ने प्रभु की शिविका को, और देवों ने गणधरों तथा साधुओं की दोनों पृथक-पृथक् शिविकाओं को उठाया। तीनों चिताओं के पास आकर एक चिता पर शक्र ने प्रभु के पार्थिव शरीर को रखा। देवों ने गणधरों के पार्थिव शरीर उनके अन्तिम संस्कार के लिए निर्मित दूसरी चिता पर और साधुओं के शरीर तीसरी चिता पर रखे। शक्र की आज्ञा से अग्नि कुमारों ने क्रमशः तीनों चिताओं में अग्नि की विकुर्वणा की और वायुकुमार देवों ने अग्नि को प्रज्वलित किया। उस समय अग्निकुमारों और वायुकुमारों के नेत्र अश्रुओं से पूर्ण और शोक से बोझिल बने हुए थे। गोशीर्ष चन्दन की काष्ठ से चुनी हुई उन चिताओं में देवों द्वारा कालागरु आदि अनेक

प्रकार के सुगन्धित द्रव्य डाले गये। प्रभु के और उनके अन्तेवासियों के पार्थिव शरीरों का अग्नि-संस्कार हो जाने पर शक्र की आज्ञा से मेघकुमार देवों ने क्षीरोदक से उन तीनों चिताओं को ठंडा किया। सभी देवेन्द्रों ने अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार प्रभु की दाढ़ों और दांतों को तथा शेष देवों ने प्रभु की अस्थियों को ग्रहण किया।

तदुपरान्त देवराज शक्र ने भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों को सम्बोधित करते हुए कहा— हे देवानुप्रियों! शीघ्रता से सर्वरत्नमय विशाल आलयों (स्थान) वाले तीन चैत्य-स्तूपों का निर्माण करो। उनमें से एक तो तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव की चिता के स्थान पर हो। उन चार प्रकार के देवों ने क्रमशः प्रभु की चिता पर, गणधरों की चिता पर और अणगारों की चिता पर तीन चैत्यस्तूप का निर्माण किया।

आवश्यक निर्युक्ति में उन देवनिर्मित और आवश्यक मलय में भरत निर्मित चैत्यस्तूपों के सम्बन्ध में जो उल्लेख है, वह इस प्रकार है :

मडयं मयस्स देहो, तं मरुदेवीए पढम सिद्धो त्ति।
देवेहिं पुरा महियं, झावणया अग्गिसक्कारो य ।।६०।।
सो जिणदेहाईणं, देवेहिं कतो चितासु थूभा य।
सद्दो य रुण्णसद्दो, लोगो वि ततो तहाय कतो ।।६१।।
तथा भगवद्देहादिदग्धस्थानेषु भरतेन स्तूपा कृता, ततो

आवश्यक मलय में लिखित है—

लोकेऽपि तत आरभ्य मृतक दाह स्थानेषु स्तूपा प्रवर्तन्ते।। (आवश्यक मलय।।)

आचारांग निर्युक्ति के अतिरिक्त आवश्यक निर्युक्ति की निम्नलिखित गाथाओं से भी अष्टापद तीर्थ का विशेष परिचय मिलता है— आवश्यक सूत्र जैनागम के अन्तर्गत चार मूल सूत्रों में द्वितीय है।

जीवन की वह क्रिया जिसके अभाव में मानव आगे नहीं बढ़ सकता आवश्यक कहलाती है। आवश्यक सूत्र की सबसे प्राचीन व्याख्या आवश्यक निर्युक्ति है जिसमें भगवान ऋषभदेव के चरित्र का वर्णन मिलता है जिसके अन्तर्गत उनका अष्टापद पर विहार करने, निर्वाण प्राप्त करने तथा भरत द्वारा चैत्यों का निर्माण करने का विवरण है............

तित्थयराण पढमो असभरिसी विहरिओ निरुवसग्गो।
अट्ठावओ जगवरो, अग्ग (य) भूमि जिणवरस्स ।।३३८।।
अह भगवं भवमहणो, पुव्वाणमणूणगं सयसहस्सं।
अणुपुव्वीं विहरिऊणं, पत्तो अट्ठावयं सेलं ।।४३३।।
अट्ठावयंमि सेले, चउदस भत्तेण सो महरिसीणां।
दसहि सहस्सेहिं समं, निव्वाणमणुत्तरं पत्तो ।।४३४।।
निव्वाणं चिइगागिई, जिणास्स इक्खाग सेसयाणं च।
सकहा थूभरजिणहरे जायग तेणाहि अग्गित्ति ।।४३५।।

तब संसार-दुःख का अन्त करने वाले भगवान् ऋषभदेव सम्पूर्ण एक लाख वर्षों तक पृथ्वी पर विहार करके अनुक्रम से अष्टापद पर्वत पर पहुंचे और छः उपवास के अन्त में दस हजार मुनिगण के साथ सर्वोच्च निर्वाण को प्राप्त हुए। भगवान् ऋषभदेव, उनके गणधरों और अन्तेवासी साधुओं की तीन चिताओं पर पृथक-पृथक तीन चैत्यस्तूपों का निर्माण करने के पश्चात् सभी देवेन्द्र अपने देव-देवी परिवार के साथ नन्दीश्वर द्वीप में गये। वहां उन्होंने भगवान् ऋषभदेव का अष्टाह्निक निर्वाण महोत्सव मनाया और अपने-अपने स्थान को लौट गये।

ऋषभदेव के निर्वाण स्थान अष्टापद का विवरण हमें आचारांग निर्युक्ति, आवश्यक निर्युक्ति, उत्तराध्ययन सूत्र की निर्युक्ति के अध्ययन १० में, निशिथ चूर्णि, विविध तीर्थ कल्प, आचार्य धर्मघोष

सूरि रचित ज्ञानप्रकाश दीप, शिलांक की कृति चउपन्न महापुरिष चरियं (९वीं शताब्दी), आदि पुराण और उत्तर पुराण, त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरियं (हेमचन्द्राचार्य), पंचमहातीर्थ, शत्रुञ्जय महात्मय (धनेश्वर सूरि कृत) वसुदेव हिन्डी, जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति, तिलोयपण्णति, पंच महातीर्थ, अष्टापद तप, गौतम रास, गौतम अष्टकम, रविषेण के पद्म चरित, विमलसूरि के पउमचरिउ, पूज्यपाद के निर्वाण भक्ति, पोटाला पैलेस (दलाईलामा का निवास स्थान) के प्राचीन ग्रन्थों में, लामचीदास गोलालारे का विवरण 'मेरी कैलास यात्रा' में, सहजानन्द जी के स्तवन आदि में स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है।

आचारांग निर्युक्ति में लिखा है कि—

अट्ठावय मुज्जिंते गयग्गपद धम्मचक्के।
पासरहा वत्तनगं चमरूप्पायं च वंदामि।।

तिलोयपण्णति की गाथा ११८६ में लिखा है ऋषभ देव माघ कृष्णा चतुर्दशी पूर्वान्ह में अपने जन्म नक्षत्र (उत्तराषाढ़) के रहते कैलाश पर्वत से १०,००० मुनियों के साथ मोंक्ष को प्राप्त हुए। हरिवंश पुराण (जिनसेन) और महापुराण (पुष्पदंत) में वर्णित है कि जब ऋषभदेव की आयु के चौदह दिन शेष रह गये तब वे कैलाश पर्वत पर पहुँचे।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति स्टीक पूर्व भाग १५८।१ पृष्ठ में उल्लेख है कि भरत ने ऋषभदेव भगवान की चिता भूमि पर अष्टापद पर्वत की चोटी पर स्तूप का निर्माण कराया। **"चेइअ थूभे करेह"**

अष्टापद गिरि कल्प में ऋषभदेव के अष्टापद पर निर्वाण का विस्तृत रूप से उल्लेख करके अष्टापद की महिमा के विषय में बताया गया है। जो इस प्रकार है।

अष्टापद–स्वर्ण के समान देह की कान्ति वाले भवरूपी हस्ती के लिये अष्टापद के समान श्री ऋषभदेव को नमस्कार करके अष्टापद गिरि का कल्प संक्षेप से कहता हूँ।

इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में दक्षिण भरतार्द्ध में भारतवर्ष में नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लंबी अयोध्या नामक नगरी है। यही श्री ऋषभ-अजित-अभिनंदन-सुमति-अनंतादि जिनेश्वरों की जन्मभूमि है। इस के उत्तर दिशा में बारह योजन पर अष्टापद नामक कैलाश अपर नाम वाला रम्य गिरिश्रेष्ठ, आठ योजन ऊंचा, स्वच्छ स्फटिक शिलामय है। इसी से लोगों में धवल गिरि नाम भी प्रसिद्ध है। आज भी अयोध्या के निकटवर्ती उड्डुयकूट पर्वत पर स्थित होने पर आकाश निर्मल हो तो उसकी धवल शिखर पंक्तियाँ दिखती है। फिर वह महासरोवर, घने सरस वृक्ष, पानी के पूर वाले झरनों से युक्त, परिपार्श्व में संचरण करते जलधर, मत्त मोर आदि पक्षियों के कोलाहल युक्त, किन्नर-विद्याधर रमणियों से रमणीक, चैत्यों को वंदन करने के लिये आने वाले चारण-श्रमणादि लोगों के दर्शनमात्र से भूख प्यास हरण करने वाला, निकटवर्त्ती मानसरोवर विराजित है। इसकी उपत्यका में साकेतवासी लोग नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हैं।

इसी के शिखर पर ऋषभदेव स्वामी चतुर्दश भक्त से पर्यंकासन स्थित, दस हजार अणगारों के साथ माघ कृष्ण त्रयोदशी के दिन अभिजित नक्षत्र में पूर्वाह्न में निर्वाण प्राप्त हुए। शक्रादि ने वहाँ स्वामी का देह-संस्कार किया। पूर्व दिशा में स्वामी की चिता, दक्षिण दिशा में इक्ष्वाकुवंशियों की और पश्चिम दिशा में शेष साधुओं की थी। उन तीन चितास्थानों पर देवों ने तीन स्तूप निर्मित किये। भरत चक्रवर्ती ने स्वामी के संस्कार के निकटवर्ती भूतल पर एक योजन लंबा, आधा योजन चौड़ा, तीन कोस ऊँचा सिंह निषद्या नामक प्रासाद रत्नोपल-वार्द्धकि रत्न के द्वारा बनवाया। उसके स्फटिक रत्नमय चार द्वार हैं। उभय पक्ष में सोलह रत्न चंदन कलश हैं। प्रत्येक द्वार पर सोलह रत्नमय तोरण है। द्वार-द्वार पर सोलह अष्टमंगल हैं। उन द्वारों में चार विशाल मुख्य मण्डप हैं। उन मुख्य मण्डपों के आगे चार प्रेक्षामण्डप

है। प्रत्येक अखाड़े के बीच में रत्नसिंहासन हैं। प्रत्येक प्रेक्षा-मण्डप के आगे मणिपीठिकाएँ हैं। उनके ऊपर रत्नमय चैत्य-स्तूप हैं। उन चैत्यस्तूपों के आगे प्रत्येक के प्रतिदिशा में बड़ी विशाल पूजा-मणि पीठिका हैं। उन प्रत्येक के ऊपर चैत्य वृक्ष है। चैत्य स्तूप के सम्मुख पाँच सौ धनुष प्रमाण वाली सर्वांग रत्न निर्मित ऋषभ वर्द्धमान-चन्द्रानन-वारिषेण नामक पर्यंकासन विराजित मनोहर शाश्वत जिनप्रतिमाएँ नन्दीश्वर द्वीप चैत्य मध्य स्थित की भाँति हैं। उन चैत्य-स्तूपों के आगे प्रत्येक चैत्य-पादप हैं। उन चैत्य-वृक्षों के आगे मणिपीठिकाएँ हैं। उन प्रत्येक के ऊपर इन्द्र-ध्वजाओं के आगे तोरण और सोपान युक्त, स्वच्छ शीतल जल से पूर्ण, विचित्र कमल शालिनी, मनोहर दधि मुखाधार पुष्करिणी के सदृश्य नन्दा पुष्करिणी है।

सिंह-निषद्या महाचैत्य के मध्य भाग में विशाल मणिपीठिका है। उनके ऊपर चित्र रत्नमय देवच्छंदक है। उसके ऊपर नाना वर्ण के सुगम उल्लोच है। उल्लोचों के अन्तर पार्श्व में वज्रमय अंकुश हैं। उन अंकुशों से अवलम्बित घड़े में आने योग्य आँवले जैसे प्रमाण के मुक्ताओं के हार हैं। हार-पंक्तियों में विमल मणिमालिकाएँ है। मणिमालिकाओं के नीचे वज्रमालिकाएँ हैं। चैत्य भित्ती में विचित्र मणिमय गवाक्ष हैं, जिनमें जलते हुए अगर धूप समूह की मालिकाएँ हैं।

उस देवच्छंदक में रत्नमय ऋषिभादि चौबीस जिनप्रतिमाएँ अपने-अपने संस्थान, प्रमाण और वर्ण वाली भरत चक्रवर्त्तीकारित हैं। उनमें सोलह प्रतिमाएँ ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, सुपार्श्व, शीतल, श्रेयांस, विमल, अनन्त, शान्ति, कुन्थु, अर, नमि और महावीर भगवान् की स्वर्णमय हैं। मुनिसुव्रत और नेमिनाथ की लाजवर्तमय है। चन्द्रप्रभ और सुविधिनाथ की स्फटिक रत्नमय हैं। मल्लि और पार्श्वनाथ की वैदूर्यमय हैं। पद्म-प्रभ और वासपज्य भगवान की पद्मरागमय

हैं। उन सब प्रतिमाओं के लोहिताक्ष प्रतिषेक पूर्ण अंक रत्नमय नख हैं। नखपर्यन्त जावयर के जैसे लोहिताक्ष मणि रस का जो सिंचन किया जाता है उसे प्रतिषेक कहते हैं। नाभि, केशान्तभूमि, जिह्वा, तालु, श्रीवत्स, चुचुक, हाथ और पाँवों के तले तपनीय स्वर्णमय हैं। नयनपद्म, कनीनिकाएँ, मंशु, भौंहें, रोम और शिरके केश अरिष्ट-रत्नमय हैं। ओष्ठ विद्रुममय हैं, दन्त स्फटिकमय हैं, शीर्षघटिका वज्रमय हैं। अन्दर लोहिताक्ष प्रतिषेक वाली स्वर्णमय नाशिकाएँ हैं। लोहिताक्ष प्रतिषेक प्रान्त वाले अंकमय लोचन हैं। उन प्रतिमाओं के पृष्ठ भाग में प्रत्येक के एक-एक मुक्ताप्रवाल जाल कंस कोरंट मल्ल दाम वाली, स्फटिक मणि-रत्न के दण्ड वाली, श्वेत छत्र के धारण करने वाली छत्रधर प्रतिमाएँ हैं। उनके दोनों ओर प्रत्येक उठाए हुए मणिचामरों वाली रत्नमयी चामर धारिणी प्रतिमाएँ हैं। प्रतिमाओं के आगे दो-दो नागप्रतिमाएँ, दो-दो यक्षप्रतिमाएँ , दो-दो भूतप्रतिमाएँ, दो-दो कुण्डधारिणी प्रतिमाएँ सर्वांगोज्ज्वल रत्नमयी कृतांज्जलि हो पर्युपासना करती हैं। तथा देवछंदा में चौबीस रत्न घण्टे, चौबीस माणिक्य दर्पण और वैसे ही स्वर्णमयी स्थान स्थित दीपिकाएँ हैं तथा रत्नकरण्डक पुष्प चंगेरियां लोहमस्तपट्टलिकाएं आभरणकरण्डक कनकमय हैं। धूपदहनक, आरतियाँ, रत्नमय मंगलदीप, रत्नमय भृंगार, रत्नमय स्थाल, सोने के प्रतिग्रह, रत्नचन्दन के कलश, रत्नमय सिंहासन, रत्नमय अष्टमंडल, स्वर्णमय तेल के डब्बे, कनकमय धूपभाण्ड और स्वर्णमय कमलहस्तक हैं। ये सब प्रत्येक प्रतिमा के आगे होते हैं। वह चैत्य चन्द्रकान्त साल से शोभित है। ईहामृग, वृषभ, मकर, तुरंगम, नर-किन्नर, विहग, बालग, रुरू, शरभ, चमरी, गज, वनलताओं से विचित्रित रत्नस्तम्भों से समाकुल है। स्वर्ण के ध्वज-दण्डमण्डित पताका है। उपस्थित किंकिणी शब्द से मुखर ऊपर पद्मराग कलश से विराजित और गोशीर्ष चन्दनरस के हस्तकों से लांछित है। विचित्र

चेष्टाओं वाली, अधिष्ठित नितम्ब वाली माणिक्य की शालभंजिकाएँ, चन्दनरस से लिप्त कलशयुग से अलंकृत द्वारदेश के उभय पक्ष में शोभायमान हैं। तिरछी बाँध के लटकाई हुई धूपित-सुगन्धित सुन्दर मालाएँ, पंचवर्म कुसुम रचित गृहतल, कर्पूर, अगर, कस्तूरी, धूपधूप धारित अप्सरागण संकीर्ण, विद्याधरी-परिवृत, आगे-पीछे और पार्श्व में चारु चैत्य पादपों, मणिपीठिकाओं से विभूषित भरत की आज्ञा से यथाविधि वार्धकिरत्न के द्वारा निष्पादित है। वहीं दिव्य रत्न-शिलामय ९९ भाइयों की प्रतिमाएँ बनवायी। सुश्रूषा करती हुई अपनी प्रतिमा भी बनवायी। चैत्य के बाहर भगवान ऋषभदेव स्वामी का एक स्तूप और ९९ भाइयों के स्तूप करवाए। मनुष्य लोग यहाँ आवागमन करके आशातना न करें इसलिये लोहयंत्रमय आरक्षक पुरुष बनवाए जिससे वह अगम्य हो गया। पर्वत की चोटियाँ भी दण्डरत्न से तोड़ दी, अतः वह गिरिराज अनारोहणीय हो गया। योजन-योजन के अन्तर से मेखलारूप आठ सीढ़ियाँ—पदों द्वारा मनष्यों के लिए अलंघ्य कर दिया। जिससे अष्टापद नाम प्रसिद्ध हो गया।

फिर काल-क्रम से चैत्यरक्षण के निमित्त सगर चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्रों ने दण्डरत्न से पृथ्वी को खोदकर सहस्र योजन की परिखा की। दण्डरत्न से गंगातट को विदीर्ण कर जल से पूर्ण किया। तब गंगा को खाई में भरने से अष्टापदासन्न ग्राम नगर, पुरादि डूबने लगे। अतः उसे दण्ड-रत्न से निकालकर कुरु देश के बीच से, हस्तिनापुर के दक्षिण से, कौशलदेश के पश्चिम, प्रयाग से उत्तर, काशी देश से दक्षिण, वत्सदेश में दक्षिण से, मगध के उत्तर से नदी का मार्ग काटते हुए सगरादिष्ट जण्हुपुत्र भागीरथ कुमार ने पूर्वी समुद्र में उतार दिया। तब से गंगासागर तीर्थ हो गया।

इसी पर्वत पर ऋषभदेव स्वामी के आठ पौत्र, और बाहुबलि प्रमुख निनाणवें पुत्र भी स्वामी के साथ सिद्ध हुए। इस प्रकार एक सौ आठ उत्कृष्ट अवगाहना से एक समय में आश्चर्यभूत सिद्ध हुए।

श्री वर्द्धमान स्वामी ने स्वयं कहा कि जो मनुष्य इस पर्वत पर स्वशक्ति से चढ़कर चैत्यों की वन्दना करेगा वह इसी भव में मोक्ष प्राप्त होगा। यह सुनकर लब्धिनिधान भगवान गौतम स्वामी इस पर्वतश्रेष्ठ पर चढ़े। चैत्यों की वन्दना कर अशोक वृक्ष के नीचे वैश्रमण के आगे तप से कृश अंग का बखान करते हुए स्वयं उपचित शरीर वाले अन्यथा वादकारी हैं—ऐसे उसके विकल्प को निवारण करने के लिए पुण्डरीक अध्ययन प्रणीत किया। पुष्ट देह वाला पुण्डरीक भावशुद्धि से सर्वार्थसिद्ध गया और दुर्बल शरीर वाला कण्डरीक सातवीं नरक गया। यह पुण्डरीक अध्ययन सामानिक देव वैश्रमण ने गौतम स्वामी के मुख से सुनकर अवधारित किया। वे ही तुंबवण सन्निवेश में धनगिरि की पत्नी सुनंदा के गर्भ में उत्पन्न होकर दश पूर्वधर श्री वज्र स्वामी हुए। अष्टापद से उतरते हुए गौतम स्वामी ने कौडिन्य दिन्न-सेवालि तापसों को पन्द्रह सौ तीन की संख्या में दीक्षित किया। उन्होंने जनपरम्परा से इस तीर्थ के चैत्यों की वंदना करने वाला इसी भव में मोक्ष प्राप्त करेगा—ऐसे वीर-वचनों को सुनकर प्रथम, दूसरी और तीसरी मेखला संख्यानुसार कौडिन्यादि चढ़े और इससे आगे जाने में असमर्थ थे। उन्होंने गौतम स्वामी को अप्रतिहत उतरते देखकर विस्मित हो प्रतिबोध पाया और उनके पास दीक्षित हो गये।

इसी पर्वत पर भरत चक्रवर्ती आदि अनेक महर्षि कोटि सिद्ध हुए। वहीं सगर चक्रवर्ती के सुबुद्धि नामक महामात्य ने जन्हु आदि सगर के पुत्रों के समक्ष आदित्ययशा से लेकर पचास लाख कोटि सागरोपम काल में भरत महाराजा के वंश में समुद्भूत राजर्षियों को चित्रान्तर गण्डिका से सर्वार्थसिद्धगति और मोक्ष गए बतलाया।

इसी गिरिराज पर प्रवचन देव विनीत वीरमती ने चौबीस जिन-प्रतिमाओं के भाल-स्थल पर रत्नजटित स्वर्णतिलक चढ़ाए। उसके तब धूसरी भव, युगलिया भव और देव भव प्राप्त कर दमयन्ती के भव में अन्धकार को दूर करने वाला भाल-स्थान में स्वाभाविक तिलक हुआ।

इसी पर्वत पर वालि महर्षि कायोत्सर्ग करके स्थित थे। विमानस्खलन से कुपित रावण ने पूर्व वैर को स्मरण कर नीचे की भूमि खोदकर, उसमें प्रविष्ट होकर अपने वैरी सहित अष्टापद गिरि को उठाकर लवण समुद्र में फेंकने की बुद्धि से हजारों विद्याओं का स्मरण कर पर्वत को उठाया। उन राजर्षि ने अवधिज्ञान से यह जानकर चैत्य-रक्षा के निमित्त पैर के अंगूठे से गिरि-शिखर को दबाया। तब इससे संकुचितगात्र दशानन मुंह से रुधिर वमन करते हुए चीखनें लगा। जिससे वह रावण नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब दयालु महर्षि ने छोड़ा तो वह चरणों में गिरकर क्षमायाचना कर स्वस्थान गया।

यहीं लंकाधिपति ने जिनेश्वरदेव के समक्ष नाटक करते हुए दैवयोग से वीणा की ताँत टूटने पर नाट्य-भंग न हो इस विचार से अपनी भुजा की तांत काट कर वीणा में जोड़ दिया। इस प्रकार वीणावादन और भक्ति-साहस से सन्तुष्ट धरणेन्द्र ने तीर्थ वन्दना के लिए आये हुए रावण को अमोघ विजयाशक्ति रूपकारिणी विद्या दी।

इसी पर्वत पर गौतम स्वामी ने सिंहनिषद्या चैत्य के दक्षिण द्वार से प्रवेश कर पहले संभवनाथ आदि चार प्रतिमाओं को वन्दन किया। फिर प्रदक्षिणा देते हुए पश्चिम द्वार से सुपार्श्वादि आठ तीर्थंकरों को, फिर उत्तर द्वार से धर्मनाथादि दश को, फिर पूर्व द्वार से ऋषभदेव अजितनाथ जिनेश्वरद्वय को वन्दन किया।

यद्यपि यह तीर्थ अगम्य है फिर भी स्फटिक वन-गहन समर वालों से जो जल में प्रतिविम्ब चैत्य के ध्वज-कलशादि देखता है वह भाव-विशुद्धि वाला भव्य जीव वहाँ ही पूजा-न्हवणादि करते हुए यात्रा का फल प्राप्त करता है, क्योंकि भावोचित्त फलप्राप्ति कही गयी है।

भरतेश्वर से निर्मापित प्रतिमायुक्त इस चैत्य-स्तूपों की जो वन्दन-पूजन करते हैं वे धन्य हैं, वे श्रीनिलय हैं। (श्रीजिन प्रभ सूरि द्वारा रचित अष्टापद कल्प — स्व. श्री भवरलाल जी नाहटा द्वारा अनुवादित)।

श्री जिनप्रभ सूरि ने अपनी कृति **विविध तीर्थ कल्प** (रचना-सन् १२३२ ई०) में संग्रहीत अपने **अष्टापद गिरि कल्प में** अष्टापद का ही अपर नाम कैलाश बताया है पर साथ ही पौराणिक साहित्य के आधार से उसकी स्थिति अयोध्या नगरी से उत्तर दिशा में १२ योजन (१५० कि० मी०) की दूरी पर बताई है जिसकी धवल शिखर पंक्तियाँ आज भी आकाश निर्मल होने पर **अयोध्या के निकटवर्ती उड्डयकूट** से दिखाई पड़ती है। इसके निकट ही मानसरोवर है जो परिपार्श्व में संचरण करते जलचर, **मत्त मोर** आदि पक्षियों के कोलाहल से युक्त है तथा **इसकी उपत्यका में साकेतवासी** लोग नाना प्रकार की क्रीड़ाएं करते हैं।

श्री धनेश्वर सूरि कृति शत्रुञ्जय महात्मय में भी अष्टापद का विवरण इस प्रकार मिलता है— तीनों लोक के गुरू भगवान, एक लाख पूर्व वर्ष तक व्रत का पालन करने के बाद अपना मोक्षकाल समीप में जानकर अष्टापद पर्वत पर गए। उस शुद्ध प्रदेश में दस हजार मुनियों के साथ जगदीश्वर भगवान् ने अनशन ग्रहण किया। गला भर आने से जिसके मुंह में से स्पष्ट शब्द नहीं निकल रहे हैं ऐसे उद्यानपति ने भरत के पास आकर के सब वृत्तान्त कह सुनाया। भरत भी इस प्रकार की अवस्था में आए हुए भगवान के बारे में

सुनकर बहुत दुःखी हुए और वाहन अथवा साथ में किसी आदमी को लिये बिना शीघ्र ही पैदल चल पड़े। पीछे आनेवाले लोगों को अपने से बहुत दूर रखकर, खूब आंसू बहाते हुए, कांटे आदि चुभने से होनेवाली पीड़ा को न गिनते हुए, शोकयुक्त तथा अपने ही जैसी अवस्था में पड़ी हुई स्त्रियों के साथ जिस तरह ऊंचे घर पर चढ़े उस तरह वह एकदम अष्टापद पर्वत पर चढ़ गए। वहां पर सभी इन्द्रियों के आस्त्रवों को रोककर पर्यंकासन में बैठे हुए भगवान को देखकर आंसुओं से व्याप्त आँखोंवाले भरत ने उन्हें प्रणाम किया। आसन कांपने से सभी इन्द्र भी वहां पर आए। शोक से अत्यन्त व्याकुल उन्होंने प्रदक्षिणा करके भगवान् को नमस्कार किया। इस अवसर्पिणी काल के सुषमा-दुःषमा नामके तीसरे आरे के उनानवे पखवाड़े बाकी रहने पर माघ मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन पूर्वाह्नकाल (सुबह से लेकर दोपहर तक का समय) में चन्द्र जब अभिजित नक्षत्र में आया तब पर्यंकासन में बैठे हुए तथा स्थूल मन-वचन-काय के योग (प्रवृत्ति) का त्याग करनेवाले प्रभु ने सूक्ष्म काययोग द्वारा बादर मन-वचन-काय के योग का निरोध करके सूक्ष्मक्रिया नामका चौथा शुक्लध्यान प्राप्त किया। बाद में सूक्ष्मकाययोग का भी त्याग करके तथा उच्छिन्नक्रिया नामका चौथा शुक्लध्यान प्राप्त करके भगवान् लोक के अग्रभाग (सिद्धक्षेत्र) में जा पहुँचे। भगवान के साथ जो बाहुबलि आदि मुनि थे उन्होंने भी विधिवत् शुक्लध्यान का अवलम्बन लेकर क्षणभर में मोक्षपद प्राप्त किया। इधर भरत ने भी चिताके पास की जमीन पर वर्द्धकी रत्न द्वारा भगवान् का एक प्रासाद बनवाया। तीन कोस ऊंचे और एक योजन विस्तृत उस मन्दिर में तोरणों से मनोहर ऐसे चार दरवाजे बनवाए। इन चारों दरवाजों के पास स्वर्ग मण्डप जैसे मण्डप तथा उनके भीतर पीठिका, देवच्छन्दिका तथा वेदिका का भी निर्माण किया गया। उसमें सुन्दर

पीठिका के ऊपर कमलासन पर आसीन और आठ प्रातिहार्य सहित अरिहन्त भगवान् की रत्नमय शाश्वत चार प्रतिमाएं तथा देवच्छन्द के ऊपर अपनी अपनी ऊंचाई, लांछन (चिन्ह) और वर्णवाली चौबीस तीर्थंकरों की मणि तथा रत्नों की मूर्तियां स्थापित की। उन प्रत्येक मूर्तियों के ऊपर तीन-तीन छत्र, दोनों ओर दो-दो चामर, आराधक यक्ष, किन्नर और ध्वजाएं भी स्थापित करने में आईं। इनके अतिरिक्त उन्होंने अपने पूर्वजों की, भाईयों की, दोनों बहनों की तथा भक्ति से विनम्र ऐसी अपनी भी प्रतिमा का निर्माण किया। चैत्य के चारों ओर चैत्यवृक्ष, कल्पवृक्ष, सरोवर कुएं, बावड़ियां और खूब ऊंचे मठ बनवाए। चैत्य के बाहर मणि-रत्नों का भगवान् का उंचा स्तूप और उस स्तूप के आगे दूसरे भाईयों के स्तूप भी खड़े किये। भरतराजा की आज्ञा से इन स्तूपों के चारों ओर पृथ्वी पर विचरण करनेवाले अनेक प्राणियों द्वारा अभेद्य लोहपुरुष और अधिष्ठायक देव भी स्थापित किए गए।"

सगर पुत्रों द्वारा अष्टापद पर जिनेश्वरों की पूजा का वर्णन करते हुए लिखा है........ "राजाओं द्वारा सेवित बलवान् सगर चक्रवर्ती भी मानों एकही नगर हो इस तरह छह खण्डवाले भरत क्षेत्र का पालन कर रहा था। उसके जह्नु आदि साठ हजार पुत्र हुए। वे सब अति-अद्भुत, तारुण्य एवं पुण्य से पूर्ण शरीरवाले तथा शस्त्र और शास्त्र के जानकार थे। एक दिन अपने पूर्वजों के तीर्थों में वन्दन करने के लिये उत्सुक वे अपने पिता के पास से जबरदस्ती आज्ञा लेकरके सेना और वाहनों के साथ चल पड़े। राजाकी आज्ञा से स्त्रीरत्न को छोड़कर बाकी के चक्र, दण्ड आदि तेरह रत्न, यक्ष, राजा और बहुत सी सेना उन्होंने अपने साथ में ली। एक एक योजन का क्रमश; प्रयाण करते हुए वे कुछ दिनों के बाद अद्भुत और ऊंचे

अष्टापद पर्वत पर पहुंचे। वह पर्वत कल्पवृक्ष, चम्पक, अशोक, बरगद, पीपल, तमाल, गुलाब, देवदार, आम मौलसिरी आदि वृक्षों से व्याप्त था तथा वह मणि और रत्नों की कान्ति के प्रवाह से आकाश को चित्रित कर रहा था। ऐसे पर्वत को देखकरके मानों वह अपने पूर्वजों की कीर्तिरूपी वृक्ष का मूल हो—इस तरह वे मानने लगे। आठ पैडियों से उस पर चढ़कर उन्होंने हर्ष के साथ जगत्प्रभु के प्रासादों की तीन प्रदक्षिणाएं दी। उन प्रसादों में प्रवेश करके दक्षिण दिशा में आए हुए चार जिनेश्वर भगवानों की, पश्चिम दिशा में हुए आठ जिनेन्द्र देवोंकी, उत्तर दिशा में आए हुए दस अरिहन्त प्रभु की तथा पूर्व दिशा में आए हुए दो जिन परमात्माओं की—इस प्रकार कुल चौबीस तीर्थंकर भगवानों की उन सबने मन-वचन-काया की शुद्धि के साथ पुष्प, अक्षत एवं स्तुति द्वारा पूजा की।"

इस सारे अष्टापद (कैलास) प्रकरण में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य जो सामने आया है वो है लौह निर्मित यन्त्रमय मानव की बात। आज जो यन्त्रमय मानव रोबोट बन रहे है उसका वर्णन १२वीं शताब्दी में हेमचन्द्राचार्य ने त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र में कैलाश के सन्दर्भ में किया है ऋषभदेव के पुत्र प्रथम चक्रवर्ती सम्राट भरत ने अष्टापद पर मनुष्य लोग वहाँ आवागमन करके आशातना न करे इसलिये लोहयंत्रमय आरक्षक पुरुष बनवाये।

आज हम अपने को सभ्य और सुसंस्कृति मानते है, वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रगतिशील समझते है। पर आज से हजारों वर्षों पहले का विज्ञान कितना विकसित था यह हमें साहित्य में वर्णित उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है। वनस्पति में जीव की अवधारणा, अणु और पुद्गल का स्वरूप और यन्त्रमय मानव का जैन साहित्य में वर्णन एक बहुत ही प्रामाणिक और महत्वपूर्ण दस्तावेज है। आज से

पचास-पचपन वर्ष पूर्व इस विवरण को काल्पनिक और अतिश्योक्ति से भरा समझा जाता था। लेकिन आज यन्त्रमय मानव रोबोट के निर्माण ने उस यथार्थ को जिसे कल्पना समझते थे उसकी वास्तविकता को प्रमाणित कर दिया है। सूर्य रश्मियों को पकड़कर गौतम स्वामी का कैलास शिखर के आरोहण का अर्थ भी अगर देखे तो यह स्पष्ट होता है कि कैलास के लौह यन्त्र मय मानव सूर्य की किरणों से उर्जा प्राप्त कर अपना निर्धारित कार्य करते थे जिसको आज की भाषा में सोलर एनर्जी कहते है। यन्त्र मय मानव की अवधारणा का महत्व समझकर स्वर्गीय गणेश जी लालवानी ने जैन कथानक पर अपनी किताब **बरसात की एक रात** में **'रोबोट या यन्त्र मय पुरुष'** कथा में कैलास के सन्दर्भ में बड़ा ही जीवन्त वर्णन किया है। जिसके विषय में स्वर्गीय नेमीचन्द जी जैन ने लिखा है कि "अतीत में जो कलाशिल्प हमारे पास था उसकी प्रच्छन्न सूचना भी हमें सहज ही मिल जाती है।" कथानक इस प्रकार है......... "बन्धुपुत्र प्लूटो जिओलॉजी का छात्र था। उसका ग्रीष्मकालीन कैम्प काश्मीर के लद्दाख और लेह अंचल में लगा था। मुझे पत्र भेजा। लिखा था-— चाहने पर मैं भी लद्दाख और लेह घूमकर आ सकता हूँ। अतः विलम्ब न कर मैं काश्मीर कि लिये रवाना हो गया।"

यद्यपि मैं प्लूटो के साथ एक दो बार हिमालय के कुछ अंचलों में घूम आया हूँ किन्तु हाँ—मैं माउन्टेनियर नहीं था जबकि प्लूटो पक्का माउन्टेनियर था। वह माउन्टेनिरयरिंग का प्रशिक्षण लेकर कई अभियानों में सम्मिलित भी हुआ था।

काश्मीर जाने के पीछे तिब्बत जाने की इच्छा कितनी स्पष्ट या अस्पष्ट थी नहीं कह सकता फिर भी तिब्बत ने मुझे हमेशा आकृष्ट किया है। विशेषकर कैलाश मानस तो मुझे जाना ही था।

इसका एक और भी कारण था—हेमचन्द्राचार्य का त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र पढ़ते समय एक स्थान पर लौह-निर्मित यन्त्रमय पुरुष के वर्णन ने मेरी दृष्टि को आकर्षित किया था। यन्त्रमय पुरुष कैसा हो सकता है? कहीं आज का रोबोट तो नहीं है? यदि यह सत्य है तब तो यही सिद्ध होता है कि आचार्य हेमचन्द्र के समय अर्थात् खृष्टीय बारहवीं शताब्दी में रोबोट-निर्माण की कला ज्ञात हो या नहीं उसकी कल्पना तो सर्वप्रथम एक भारतीय के मन में ही उत्पन्न हुई थी। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता । यह भी क्या हमारे लिये कम गौरव की वस्तु है?

आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने जब निर्वाण प्राप्त किया था तब उनके सौ पुत्रों में भरत को छोड़कर निन्यानवे पुत्रों ने भी निर्वाण प्राप्त किया था। पिता ऋषभ एवं भाइयों की स्मृति में भरत चक्रवर्ती ने उनके निर्वाण-स्थल कैलाश पर्वत पर अपने पिता के लिये एक सिंहनिषद्या नामक विशाल चैत्य और स्तूप बनवाया एवं निन्यानवे भाइयों के लिये छोटे स्तूपों का निर्माण करवाया। निर्माण के पश्चात् मनुष्य लोक से आगत मनुष्यों द्वारा इसकी पवित्रता और मर्यादा का उल्लंघन न हो इसलिये दण्डरत्न के आघात से पर्वत को स्तम्भाकृति बनवाया और दीर्घ व्यवधान में आठ सोपानों की रचना की। इस अष्ट सोपानों के कारण ही पर्वत का नाम अष्टापद पड़ा। किन्तु वे मात्र इतनी व्यवस्था कर ही सन्तुष्ट नहीं हुए, वहाँ एक यन्त्रमय पुरुष को भी स्थापित किया ताकि मृत्युलोक का मानव इस पर आरोहण करने की चेष्टा करे तो वह उसे बाधा दे — रोके।

वर्त्तमान काल में कैलाश-शिखर पर आरोहण करने की चेष्टा किसी ने की यह मैंने नहीं सुना। सम्भवतः इसका कारण है इसकी पवित्रता। अतः कैलाश-शिखर पर चढ़ने से स्थानीय अधिवासियों पर कोई विपरीत प्रतिक्रिया हो सकती है इस भय से भी अभियान

आरम्भ करने का साहस किसी ने नहीं किया। नहीं तो २२०२९ फुट ऊंचा पर्वत-श्रृंग तो कभी का अधिकृत हो गया होता। देख कहा हूँ महाराज भरत का निषेध आज भी बलवान है।

महावीर-शिष्य गणधर गौतम और विद्याधर एवं चारण मुनियों के अतिरिक्त और कोई कभी उस पर्वत पर चढ़ा है ऐसा उल्लेख जैन शास्त्रों में नहीं मिलता। विद्याधर और चारण मुनियों को आकाशगामिनी विद्या प्राप्त है इसलिये वे यत्र-तत्र स्वच्छन्द विचरण कर सकते हैं। किन्तु गौतम स्वामी योगबल से सूर्य की किरणों का अवलम्बन लेकर इस पर्वत-शिखर पर चढ़े थे। सूर्य-रश्मियों का अवलम्बन लेकर आरोहण करने का तात्पर्य उस समय मैं ठीक से नहीं समझ सका था।

कैलाश-पर्वत आदि तीर्थंकर ऋषभ की निर्वाण भूमि के रूप में केवल जैनियों के लिये ही पवित्र नहीं है हिन्दुओं के लिये भी स्वयं देवाधिदेव महादेव की निवास भूमि रूप में यह पूज्य है। तिब्बती कैलाश को डेमछोक या धर्मपाल कहते हैं। डेमछोक कैलाश के अधिष्ठायक देवता हैं जो बाघचर्म पहने हैं, गले में नर-मुण्डों की माला है, एक हाथ में डमरु और दूसरे में त्रिशूल हैं। यह शिव का ही एक रूप है। शिखर के स्तर-स्तर पर जो चक्राकार रेखा खींची दिखाई पड़ती है वह चक्रवर्ती भरत के दण्ड रत्न के आघात के कारण है या जैसा हिन्दू लोग कहते है शिव-भक्त रावण के कैलाश-उत्पाटन की व्यर्थ चेष्टा की स्मृति का अवशेष है कह नहीं सकता। तिब्बतियों में भी एक ऐसी ही कहानी प्रचलित है। गोम्वो कोंग नामक एक व्यक्ति कैलाश उत्पाटन की चेष्टा करता है किन्तु तिब्बत के ही एक सिद्धयोगी के अभिशाप से वह पाषाण में रूपान्तरित हो जाता है।

लद्दाख आकर प्लूटो और उसके संगी-साथियों के साथ कुछ दिन खूब हँसी-मजाक में व्यतीत हुए। तदुपरान्त एक दिन अवसर

पाकर मैंने उसे अपने प्लान की बात कही। उस योजना की बात सुनते ही वह उत्तेजित हो गया। उसे शान्त कर मैंने कहा इस प्लान की बात अभी तुम किसी से भी कहना मत कारण हमें इस अभियान को गुप्त रखना होगा। यदि बात फैल गयी तो तिब्बतीगण हमें चढ़ने ही नहीं देंगे इस पर्वत पर।

लद्दाख में जिस दिन कैम्प का अन्तिम दिन था उसी रात प्लूटो और मैं कैम्प त्याग कर तिब्बत की ओर बढ़े। उस समय तिब्बत चीन के अधिकार में नहीं था फिर भी यात्रा दुरुह तो थी ही। किन्तु उस दुरुहता से डर जाने वाले हम दोनों ही नहीं थे। अतः तातारों के एक दल में सम्मिलित होकर गारटक होते हुए लाशा आए। लाशा से कैलाश जाना कठिन नहीं हुआ। तिब्बती तीर्थ-यात्रियों के वेष में हम मानस होते हुए कैलाश पहुंचे।

यद्यपि हमारा लक्ष्य कैलाश आरोहण था। फिर भी तीर्थ-यात्रियों की तरह ही कैलाश की परिक्रमा देकर उस अभियान को प्रारम्भ किया। हमारा पहला उद्देश्य था किसी की दृष्टि हम पर नहीं पड़ें, दूसरा कहाँ से चढ़ना आसान होगा यह निरीक्षण करें।

कैलाश की परिक्रमा कुछ कदम चलने की या कुछ क्षणों की परिक्रमा नहीं है और न ही किसी मन्दिर के संकीर्ण परिसर में किसी प्रतिमा की परिक्रमा देना है। घोड़े की पीठ पर परिक्रमा देने से शायद दो दिनों में यह परिक्रमा पूर्ण हो जाती, किन्तु हमने तो तिब्बतियों की तरह पैदल चलकर ही परिक्रमा देने का निश्चय कर लिया था।

हमने जिस दिन परिक्रमा देना प्रारम्भ किया उसी दिन दो तिब्बतियों ने भी परिक्रमा देना शुरू किया। वे लोग तो दण्डवत देते हुए परिक्रमा दे रहे थे। उनके शरीर पर भेड़ के रोएँ का जीर्ण-शीर्ण मलिन जोब्बा था, कमर पर बेल्ट-सा बँधा था। पैरों में प्रायः घुटनों तक तिब्बती पशम के जते थे। दोनों हाथों की कुहनियां, पैरों के

घुटने और छाती पर चमड़े जैसी पट्टियां बँधी थी। खड़े होने पर दोनों जुड़े हाथों को ललाट पर लगाकर कैलाश की ओर मुख कर प्रणाम करते थे। फिर लम्बे होकर राह पर चाहे पत्थर हो या बरफ स्वच्छन्दता से सीधे लेटकर साष्टांग दण्डवत् देते थे। दण्डवत् के समय हाथ जहाँ तक पहुँच सकता वहाँ अंगुलियों से एक रेखा खींचते फिर खड़े होकर उस रेखा तक चलते। पुनः हाथ उठाकर प्रणाम कर फिर वही साष्टांग प्रणिपात करते। इस प्रकार दस-बारह दिन लग सकते थे।

हमने स्वेच्छा से ही उनका संग किया कारण उनकी यह विलंबित परिक्रमा हमें बहुत अच्छी लगी। इसमें लक्ष्य-स्थान तक पहुँचने में कोई जल्दी नहीं रहती। अलस मन्थर गति से सब कुछ चलचित्र की भाँति देखते हुए चलना था। दण्डवत के समय वे कुछ देखते थे या नहीं, नहीं जानता किन्तु हम तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से देखते हुए जा रहे थे। पथ कहीं ऊपर की ओर जाता, कहीं नीचे की ओर, कहीं जलधारा मिलती, कहीं शुष्क पाषाणी चट्टान। पत्थरों की दरारों में जमी हुई बर्फ भी मिली।

राह के आस-पास कितनी ही मणि-प्राचीरें थीं। स्तूपाकार पत्थर सजे हुए थे। कहीं कहीं पत्थरों पर छेनी से काटकर 'ओम मणिपद्मे हूं' लिखा था।

एक-एक कर दिन व्यतीत होते गए। सुबह का सूर्य सिर पर आता फिर सन्ध्या के समय पश्चिम में गिरि श्रेणियों के पीछे अदृश्य हो जाता। प्रकाश जाऊँ-जाऊँ करके भी जाता नहीं, पहाड़ों के शिखर पर जैसे रुक जाता। पहाड़ों की भी क्या अद्भुत आकृतियां थीं। कहीं लगता आस-पास मन्दिरों की चूड़ाएँ हैं। कहीं लगता पंक्तिबद्ध तीर्थ-यात्रियों की शोभा यात्रा है जो कैलास-दर्शन से विमुग्ध होकर स्तब्ध हो गयी है।

क्रमशः रात्रि होती। गुम्फा निकट रहने पर गुम्फा में आश्रय लेते, नहीं तो तम्बू गाड़कर उसमें ही रात्रि व्यतीत कर देते। बाहर कड़ी सर्दी रहती। आकाश में अगणित नक्षत्र चमकते रहते। तिब्बत के धूलरहित आकाश में उनकी दीप्ति हीरक दीप्ति-सी उज्ज्वल लगती।

कल रात डिरीफूक गुम्फा में रात्रि-यापन किया था। लोग जैसा कहते हैं वैसा ही पाया—डिरीफूक गुम्फा से कैलाश शिखर का दृश्य सर्वोत्तम है।

सन्ध्या समय मठ की छत पर चढ़कर हमने वह दृश्य देखा। यहां से कैलाश का व्यवधान दो मील है किन्तु सूक्ष्म आबहवा के कारण लगता जैसे हम हाथ बढ़ाकर उसका स्पर्श कर सकते हैं।

उस सर्वोत्तम दृश्य को एक बार देखकर हम तृप्त नहीं हुए अतः मैं और प्लूटो गहन-रात्रि में चांद उगने पर ज्योत्स्ना स्नात उस गिरि शिखर को देखने के लिये पुनः छत पर गए। कितनी अपूर्व थी तुषार शिखर की वह स्फटिक दीप्ति। हेमचन्द्राचार्य ने ठीक ही लिखा है—कैलाश-शिखर के स्फटिक मुकुर में विद्याधर नारियाँ अपना मुख देखती रहतीं। सचमुच ही देखा कि कैलाश के स्वच्छ तुषार-मुकुर में चन्द्र-किरणें प्रतिफलित हो रही थीं। तभी मेरी दृष्टि कैलाश शिखर के दोनों पार्श्व में प्रहरी की भाँति जो दो पाद शैल खड़े थे उन पर गयी। देखा—बायीं ओर के पादशैल के बगल से एक हिमवाह बहुत दूर ऊपर तक फैल गया है मन ही मन सोचा— उस पथ से ऊपर जाने का प्रयास ही सर्वोत्तम होगा। प्लूटो को भी वह हिमवाह और पादशैल दिखलाया। वह भी मेरे विचारों से सहमत हो गया।

दूसरे दिन सुबह पुनः परिक्रमा प्रारम्भ हुई। तिब्बती यात्रियों के साथ पूर्व की ही भांति हम कभी आगे होकर तो कभी पीछे होकर परिक्रमा देने लगे। तदुपरान्त मानों एकदम क्लान्त हो गए हों इस भांति एक पत्थर पर निढाल होकर बैठ गया। प्लूटो भी मेरे ही समीप आ बैठा।

साष्टांग दण्डवत् करने वाले तिब्बती तीर्थयात्री जब हमारी दृष्टि से ओझल हो गए हम उठे और हिमवाह की ओर अग्रसर होने लगे।

मध्याह्न के पूर्व तक तो हम कुछ ही आगे बढ़ पाए। हमारी गति शिथिल हो गयी थी किन्तु उससे निरुत्साहित नहीं हुए। थोड़ा विश्राम और आहारादि कर हम पुनः अग्रसर होने लगे।

वह रात हिमवाह के निकट पहाड़ पर एक ऊंची समतल भूमि पर व्यतीत की। अभियात्रियों के तम्बू हमारे साथ थे। पर्वतारोहण के लिये काँटेदार जूते, तुषार-कुठार, रस्सी आदि हमारी रूकस्याक में रखी हुई थी और साथ था सूखा खाद्य भी। विस्तृत आयोजन करना सम्भव नहीं था, बस, मानसिक बल ही हमारी शक्ति थी।

मुझे उस अंग्रेज अभियात्री व्हेलसन की कथा स्मरण होने लगी जिसने १९३४ में इसी भांति एवरेस्ट पर चढ़ने के प्रयास में प्राण खो दिये थे। उसका अदम्य मनोबल हमें बार-बार उत्साहित करने लगा।

उस रात नींद ठीक से नहीं आयी। दुश्चिन्ता तो थी ही उस पर समस्त रात्रि अत्यन्त तेज हवा चलती रही। उसका शब्द पर्वत से टकराकर गम्भीर आवाज कर रहा था। लगता था मानों कहीं दूर कोई दुंदुभि बजा रहा है। फिर तम्बू के कनात पर से भी लगातार पट्-पट् की आवाज आ रही थी। शायद ओले गिर रहे थे।

किन्तु सुबह आकाश एकदम स्वच्छ था। हिमवाह से ही हमने पुनः अपनी यात्रा प्रारम्भ की पर कुछ दूर जाने के पश्चात् ही देखा बरफ की एक छोटी सी दीवाल हमारा पथ अवरुद्ध किए खड़ी है।

क्या करें सोच ही रहे थे कि कानों को बन्द करने पर एक री री की आवाज आती है उसी प्रकार की एक आवाज कहीं से आती सुनाई पड़ी। वह आवाज कहां से आ रही है यह देखने के लिये इधर उधर देखा किन्तु कुछ दिखलाई नहीं पड़ा।

प्लूटो ने कहा—आप यहीं ठहरिये, मैं देखूँ उस तुषारी दीवाल के बगल से ऊपर चढ़ा जा सकता है या नहीं। यदि रास्ता मिला तो आपको पुकार लूँगा। अतः मैं वहीं प्रतीक्षा करता रहा। थोड़ी देर में ही उसे दीवाल के पीछे अदृश्य होते देखा।

तत्पश्चात् उसे तुषारी दीवाल के ऊपर देखा। वह मुझे उसका अनुसरण करते हुए ऊपर आने को कह रहा था।

थोड़ी देर के पश्चात् ही मैं भी उसके बगल में जा खड़ा हुआ और साथ-साथ ही आगे बढ़ने लगा किन्तु जितना ही हम अग्रसर होते वह री री शब्द क्रमशः उतना ही तीव्र होने लगा।

कुछ और आगे बढ़ने पर पाया कि हमारी गति एकाएक अवरुद्ध हो गई है।

मैं अवाक् विस्मित-सा चारों ओर देखने लगा। डिरीफूक गुम्फा से जिस पादशैल को देखा था यह वही शैल था किन्तु अब वह निर्जीव-सा नहीं लग रहा था। वह जैसे स्पन्दित हो रहा था और उनमें से एक विद्युत-तरंग ने प्रवाहित होकर हमें अदृश्य बन्धन में बाँध डाला था।

अब उस री री शब्द का कारण समझ में आया। वह पर्वत-श्रृंग नहीं, रोबोट था। वही रोबोट सूर्य-रश्मिजात विद्युत तरंग प्रवाहित कर हमें कैलाश-शिखर पर चढ़ने से रोक रहा था।

तो क्या हेमचन्द्राचार्य जिस लौह-निर्मित यन्त्रमय पुरुष की बात कह गए हैं यह वहीं यन्त्रमय पुरुष है? सूर्य-रश्मियों को पकड़कर गौतम-स्वामी के कैलाश-शिखर के आरोहण का तात्पर्य अब पूर्णतः समझ में आया। सूर्य-रश्मिजात इस विद्युत तरंग को प्रतिहत करने की अजस्र शक्ति उन्होंने अपने तपोबल से अर्जित कर ली थी।

मस्तिष्क की शिराएं-उपशिराएँ कैसे तो झनझनाने लगी। लगा जैसे वे फट जाएँगी। चिन्तन-शक्ति भी लुप्त सी होने लगी।

चेतना शक्ति के पूर्ण लुप्त होने के पूर्व ही वहाँ से लौट जाने के लिए प्लुटो से कहा। बोला—अब और नहीं। बस यहीं से लौटो। जो कुछ जानना था जान चुके।

प्लूटो को स्थिति मुझ जैसी ही थी। यहाँ का तापमान जीरो सेन्टीग्रेड़ से भी नीचे था वहाँ हम पसीने से तर-बतर हो रहे थे। तभी जैसे अस्फुट स्वर में सुन सके—मनुष्य की सीमा यहीं तक है, इसके आगे नहीं।

उसके बाद कैसे हम वहाँ से लौटे कुछ याद नहीं। किन्तु पुनः जब परिक्रमा पथ पर पहुँचे देखा- वहाँ हमारे वे ही तिब्बती सहयात्री दण्डवत् करते हुए परिक्रमा दे रहे थे।

हमें देखकर वे विस्मित हो उठे। बोले—दो दिन तुम लोग कहाँ गायब हो गये थे? खोजते-खोजते नाकोंदम हो गया। फिर आज यहाँ कैसे आ पहुँचे ?

बोला—नहीं जानता, परन्तु तुम्हारे धर्मपाल ने हमारे मन की इच्छा पूर्ण कर दी है।

स्व. गणेश ललवानी द्वारा लिखित इस कथानक में लौह निर्मित यंत्रमय पुरुष का वर्णन आज के रोबट के रूप में बहुत ही रोमांचक ढंग से किया गया है।

श्री द्वीप विजय जी कृत अष्टापद पूजा के अन्तर्गत जलपूजा में अष्टापद की अवस्थिति के विषय में लिखा है —

जंबूना दक्षिण दरवाजेथी, वैताढ्य थी मध्यम भागे रे।
नयरी अयोध्या भरतजी जाणो, कहे गणधर महाभाग रे। धन. ।।८।।
जंबूना उत्तर दरवाजेथी, वैताढ्य थी मध्यम भागे रे।
अयोध्या ऐरावतनी जाणो, कहे गणधर महाभाग रे ।।धन. ।।९।।
बार योजन छे लांबी पहोली, नंव योजन ने प्रमाण रे।
नयरी अयोध्या नजीक अष्टापद, बत्रीश कोश ऊँचाण रे ।। धन.।।१०।।

जैन धर्म में सर्वोच्च स्थान तीर्थंकरों का है जिनकी प्रतिमाओं की परम्परा जैन आगमों के अनुसार शाश्वत है। आदि भगवान ऋषभदेव के निर्वाण के बाद वहां स्तूप तथा सिंह निषधा पर्वत पर भरत चक्रवर्ती बनाये गये जिनालय में दो, चार, आठ, दस, कुल चौबीस के क्रम से प्रतिमाओं की स्थापना की गयी जिसका वर्णन सिद्धाणं, बुद्धाणं (सिद्ध स्तव) सूत्र में मिलता है।

चत्तारि अट्ठ दस दोय, वंदिया जिणवरा चउव्वीसं।
परमट्ठनिट्ठिअट्ठा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।५।।

इस प्रकार दक्षिण दिशा में चार, पश्चिम दिशा में आठ, उत्तर दिशा दस और पूर्व दिशा में दो सब मिलाकर चौबीस जिन मूर्तियां है।

गौतम स्वामी की अष्टापद तीर्थयात्रा के सन्दर्भ में महोपाध्याय श्री विनय सागरजी ने गौतम रास परिशीलन की भूमिका में लिखा है— गौतम स्वामी की अष्टापद तीर्थ यात्रा का सबसे प्राचीन प्रमाण सर्वमान्य आप्तव्याख्याकार जैनागम साहित्य के मुर्धन्य विद्वान याकिनी महत्तरासूनु आचार्य हरिभद्र सूरि 'भव विरह' के उपदेश नामक ग्रन्थ की गाथा १४१ की स्वोपज्ञ टीका में वज्रस्वामी चरित्र के अन्तर्गत गौतम स्वामी कथानक में मिलता है। इसमें गौतम स्वामी के चरित्र की मुख्य घटनाओं में गागली प्रतिबोध, अष्टापद तीर्थ की यात्रा, चक्रवर्ती भरत कारित जिन चैत्य बिम्बों की स्तवना, वज्र स्वामी के जीव को प्रतिबोध और उन्हें सम्यग की प्राप्ति, अष्टापद पर १५०० तापसों को प्रतिबोध, महावीर का निर्वाण और गौतम को केवल ज्ञान की प्राप्ति एवं निर्वाण का वर्णन है।

गौतम स्वामी चरित्र के अन्तर्गत अष्टापद का उल्लेख (सं. ९२५) अभयदेवसूरि के भगवती सूत्र की टीका (सं. ११२८) देवभद्राचार्य

के महावीर चरियं (सं. ११३९) हेमचन्द्राचार्य के त्रिशष्टि शलाका पुरुष चरित्र में मिलता है।

महोपाध्याय विनयप्रभ रचित गौतम रास में वर्णन है —

जउ अष्टापद सेल, वंदइ चढी चउवीस जिण,
आतम-लब्धिवसेण, चरम सरीरी सो य मुणि।
इय देसणा निसुणेह, गोयम गणहर संचरिय,
तापस पनर-सएण, तउ मुणि दीठउ आवतु ए ।।२५।।

गणधर गौतम की जिज्ञासा थी कि—मैं चरम शरीरी हूँ या नहीं अर्थात् इसी मानव शरीर से, इसी भव में मैं निर्वाण पद प्राप्त करूँगा या नहीं?

महावीर ने उत्तर दिया—आत्मलब्धि—स्ववीर्यबल से अष्टापद पर्वत पर जाकर भरत चक्रवर्ती निर्मित चैत्य में विराजमान चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना जो मुनि करता है, वह चरम शरीरी है।

प्रभु की उक्त देशना सुनकर गौतम स्वामी अष्टापद तीर्थ की यात्रा करने के लिये चल पड़े।

उस समय अष्टापद पर्वत पर आरोहण करने हेतु पहली, दूसरी और तीसरी सीढ़ियों पर क्रमशः पाँच सौ-पाँच सौ और पाँच सौ करके कुल पन्द्रह सौ तपस्वीगण अपनी-अपनी तपस्या के बल पर चढ़े हुए थे। उन्होंने गौतम स्वामी को आते देखा। ।।२५।।

तप सोसिय निय अंग, अम्हां सगति न उपजइ ए,
किम चढसइ दिढकाय, गज जिम दीसइ गाजतउ ए।
गिरुअउ इणे अभिमान, तापस जो मन चिंतवइ ए,
तउ मुनि चढियउ वेग, आलंबवि दिनकर किरण ए ।।२६।।

गौतम स्वामी को अष्टापद पर्वत पर चढ़ने के लिए प्रयत्नशील देखकर वे तापस मन में विचार करने लगे—यह अत्यन्त बलवान मानव जो मदमस्त हस्ति के समान झूमता हुआ आ रहा है, यह पर्वत

पर कैसे चढ़ सकेगा? असम्भव है, लगता है कि उसका अपने बल पर सीमा से अधिक अभिमान है। अरे! हमने तो उग्रतर तपस्या करते हुए स्वयं के शरीरों को शोषित कर, अस्थि-पंजर मात्र बना रखा है, तथापि हम लोग तपस्या के बल पर क्रमशः एक, दो, तीन सीढ़ियों तक ही चढ़ पाये, आगे नहीं बढ़ पाये। तापसगण सोचते ही रहे और उनके देखते ही देखते गौतम स्वामी सूर्य की किरणों के समान आत्मिक बलवीर्य का आलम्बन लेकर तत्क्षण ही आठों सीढ़ियाँ पार कर तीर्थ पर पहुँच गये ।।२६।।

कंचन मणि निप्फन्न, दण्ड-कलस ध्वज वड सहिय,
पेखवि परमाणंद, जिणहर भरहेसर महिय।
निय निय काय प्रमाण, चिहु दिसि संठिय जिणह बिम्ब,
पणमवि मन उल्लास, गोयम गणहर तिहां वसिय ।।२७।।

अष्टापद पर्वत पर चक्रवर्ती भरत महाराज द्वारा महित पूजित जिन-मन्दिर मणिरत्नों से निर्मित था, दण्ड-कलश युक्त था, विशाल ध्वजा से शोभायमान था। मन्दिर के भीतर प्रत्येक तीर्थंकर की देहमान के अनुसार २४ जिनेन्द्रों की रत्न मूर्तियाँ चारों दिशाओं में ४,८,१०,२ विराजमान थीं। मन्दिरस्थ जिन मूर्तियों के दर्शन कर गौतम स्वामी का हृदय उल्लास से सराबोर हो गया, हृदय परम आनन्द से खिल उठा। भक्ति-पूर्वक स्तवना की। सांयकाल हो जाने के कारण मन्दिर के बाहर शिला पर ही ध्यानावस्था में रात्रि व्यतीत की ।।२७।। (गौतमरास परिशीलन — महोपाध्याय विनय सागरजी पेज ११८-१२०)

श्रीगौतमाष्टकम् में भी अष्टापद का विवरण इस प्रकार है—

अष्टापदाद्रौ गगने स्वशक्त्या, ययौ जिनानां पदवन्दनाय।
निशम्य तीर्थातिशयं सुरेभ्यः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छतं मे ।।५।।

(गौतम रास परिशीलन)

जैन शास्त्रों में अष्टापद तप का वर्णन मिलता है.......

आश्विनेऽष्टाह्निकास्वेव यथाशक्ति तपःक्रमैः।

विधेयमष्ट वर्षाणि तप अष्टापदं परम्।।

अष्टापद पर्वत पर चढ़ने का तप अष्टापद पावड़ी तप कहलाता है। इसमें आसोज सुद आठम से पूर्णिमा तक के आठ दिन को एक अष्टाह्निका। (ओली) कहते हैं। उन दिनों में यथाशक्ति उपवासादि तप करना। पहली ओली में तीर्थंकर के पास स्वर्णमय एक सीढ़ी बनवाकर रखना। तथा उसकी अष्टप्रकारी पूजा करना। इस तरह आठ वर्ष तक आठ सीढ़ियां स्थापित कर तप करना।

उद्यापन में बड़ी स्नात्र विधि से चौबीस-चौबीस पकवान, फल आदि रखना। इस तप को करने से दुर्लभ वस्तु की प्राप्त होती है। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

इसमें **श्री अष्टापदतीर्थाय नमः** पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि आठ-आठ करना।

दूसरी विधिः कार्तिक बदी अमावस्या से शुरू कर एकांतरे आठ उपवास करना। पारणे के दिन एकासना करना। इस प्रकार आठ वर्ष करना।

उद्यापन में अष्टापद पूजा, घृतमय गिरि की रचना, स्वर्णमय आठ-आठ सीढ़ी वाली आठ निसरणी बनवाना। पकवान, तथा सर्व जाति के फल चौबीस-चौबीस रखना। दूसरी सब वस्तुएं आठ-आठ रखना। (जैन प्रबोध में इस तप को अष्टापद ओली भी कहा है)

(तप रत्नाकर-पेज.२१६)

अष्टापद का विवरण रविषेण के पद्मपुराण (तीर्थ वन्दन संग्रह पृष्ठ - ९) में भी मिलता है।

गुर्जर फागु काव्य के पृष्ठ २१२ में कवि समर कृत अष्टापद फागु का परिचय प्रकाशित है जो ६४ गाथाओं की रचना है। पाटण के हेमचन्द्राचार्य ज्ञान भंडार में इसकी हस्तलिखित अप्रकाशित प्रति मौजूद है।

श्री धर्मघोष सूरि द्वारा रचित अष्टापद महातीर्थ कल्प में अष्टापद पर्वत के महात्मय का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है—

जो श्रेष्ठ धर्म, कीर्ति और विद्याओं के आनन्द के आश्रम भूत भगवान ऋषभ देव द्वारा पवित्रित है और देवेन्द्रों से वन्दित है ऐसे अष्टापद गिरिराज की जय हो। १.

जहाँ आपदाएं नष्ट करने वाले अष्टापद आदि एक लाख दोषों को दूर करने वाले स्वर्ण की जैसी आभा वाले भगवान ऋषभदेव ने निर्वाण प्राप्त किया है उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। २.

भगवान ऋषभदेव के बाहुबलि आदि ९९ पुत्र प्रवर मुनिगण जहाँ अजरामर पाये उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। ३.

जहाँ प्रभु के वियोग से भीरू दस हजार मुनिवर प्रभु के साथ ही अनशन करके मुक्त हुए उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। ४.

जहाँ भगवान ऋषभदेव के साथ आठ पौत्र और ९९ पुत्र एक समय में मुक्त हुए उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। ५.

तीन चिताओं के स्थान में जहाँ मूर्त रत्नत्रय की भाँति इन्द्र ने तीन स्तूपों की स्थापना की, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। ६.

जहाँ भरत चक्रवर्ती ने सिद्धायतन के समान सिंहनिषद्या नामक चतुर्मुख चैत्य बनवाया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। ७.

जहाँ एक योजन लम्बा और उससे आधा चौड़ा एवं तीन कोश ऊँचा चैत्य विराजमान है उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। ८.

जहाँ भरत ने भाइयों की प्रतिमाएँ, चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ एवं अपनी भी प्रतिमा बनवायी, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। ९.

जहाँ भरत ने अपने-अपने आकार और वर्ग वाले वर्तमान (चौबीसी) जिनेश्वरों के बिम्ब भरवाये उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। १०.

जहाँ ९९ प्रतिमाओं से युक्त भाइयों के स्तूप एवं अर्हन्त भगवान के स्तूप बनवाये उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। ११.

भरत द्वारा जहाँ मोहरूपी सिंह का नाश करने के हेतु अष्टापद सिंह की भाँति आठ योजना प्रमाण वाली आठ सौपान से सुशोभित है, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। १२.

जहाँ भरत चक्रवर्ती आदि अनेको कोटि महर्षियों ने सिद्धि साधना की, वह अष्टापद गिरिराज की जय हो। १३.

जहाँ सगर राजा के पुत्रों के आगे भरत महाराजा के वंशज महर्षियों के सर्वार्थ सिद्ध एवं मोक्ष प्राप्ति करने वालों का सुबुद्धि ने वर्णन किया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। १४.

जहाँ समुद्र के समान विशाल आशय वाले सगर राजा के पुत्रों ने गिरिराज के चारों ओर रक्षा के लिए परिखा-सागर खाई बनाई, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। १५.

जहाँ लोग अपने पापों का प्रक्षालन करने के लिए ही मानों चारों ओर गंगा से आश्रित है और हमेशा चंचल लहरों से शोभायमान है उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। १६.

जहाँ जिनेश्वर भगवान को तिलक चढ़ाने से दमयन्ती ने अपने भालस्थल पर स्वाभाविक तिलक रूप अनुरूप कल प्राप्त किया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। १७.

जहाँ क्रोधपूर्वक उठकर समुद्र में फैंकने को प्रस्तुत रावण को चरणों से दबाकर बालि मुनि ने रुला दिया, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। १८.

लंकेन्द्र रावण द्वारा जिन पूणोत्सव के समय अपनी भुजाओं की ताँत निकालकर वीणा बजाने से धरणेन्द्र के द्वारा अमोध विजया शक्ति उसे मिली उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। १९.

जहाँ चारों दिशाओं में, चार, आठ, दश और दो जिन प्रतिमाओं को गणधर (श्री गौतम स्वामी) भगवान ने वंदन किया उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। २०.

अपनी शक्ति से जो इस गिरि को वंदन करते है वे अचल उदय को प्राप्त करते है ऐसा भगवान महावीर ने वर्णन किया उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। २१.

प्रभु के कहे हुए पुण्डरीक अध्ययन को गौतम द्वारा पढ़ने से (बोध पाकर) तिर्यक जम्भिकदेव दशपूर्वी वज्र स्वामी हुए, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। २२.

जहाँ जिनेश्वरों का स्तवन कर लौटते श्री गौतम स्वामी ने पन्द्रह सौ तापसों को दीक्षित किया उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। २३.

इस प्रकार अष्टापद पर्वत के समान अष्टापदमय चिरस्थायी महातीर्थ वर्णन किया गया है, उस अष्टापद गिरिराज की जय हो। २४.

आचार्य जिनसेन ने अपने पुराण में अष्टापद को कैलास के रूप में उल्लेख किया है। उन्होंने कैलास में भगवान् ऋषभदेव के समवसरण का वर्णन किया है जहाँ सम्राट भरत उनके दर्शन को जा रहे है इसका वर्णन इस प्रकार है—

अनुगंगातटं देशान् विलंघय ससरिद्‌गिरीन्। कैलासशैलसान्निध्यं प्रापतच्चक्रिणो बलम्।।११।। कैलासाचलमभ्यर्णमथालोक्य रथांगभृत्। निवेश्य निकटे सैन्यं प्रययौ जिनमर्चितुम् ।।१२।।

चक्रवर्ती की वह सेना गंगा नदी के किनारे-किनारे अनेक देश, नदी और पर्वतों को उल्लंघन करती हुई क्रम से कैलास पर्वत

के समीप जा पहुँची ।।११।। तदनन्तर चक्रवर्ती ने कैलास पर्वत को समीप ही देखकर सेनाओं को वहीं पास में ठहरा दिया और स्वयं जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने के लिये प्रस्थान किया ।।१२।।

अहो परममाश्चर्य तिरश्चामपि यद् गणैः। अनुयातं मुनिन्द्राणामज्ञातभयसंपदाम् ।।५५।। सोऽयमष्टापदैर्जुष्टो मृगैरन्वर्थनामभिः। पुनरष्टापदख्यातिं पुरैति त्वदुपक्रमम् ।।५६।। स्फुरन्मणितटोपान्तं तारकाचक्रमापतत्। न याति व्यक्तिमस्याद्रेस्तद्रोचिरस्छन्नण्डलम् ।।५७।।

अहा, बड़ा आश्चर्य है कि पशुओं के समूह भी, जिन्हें वन के भय और शोभा का कुछ भी पता नहीं है ऐसे मुनियों के पीछे-पीछे फिर रहे हैं ।।५५।। सार्थक नाम को धारण करने वाले अष्टापद नामके जीवों से सेवित हुआ यह पर्वत आपके चढ़ने के बाद अष्टापद नाम को प्राप्त होगा ।।५६।। जिस पर अनेक मणि देदीप्यमान हो रहे हैं ऐसे इस पर्वत के किनारे के समीप आता हुआ नक्षत्रों का समूह उन मणियों की किरणों से अपना मण्डल तिरोहित हो जाने के प्रकटता को प्राप्त नहीं हो रहा है ।।५७।।

शुद्धस्फटिकसंकाशनिर्मलोदारविग्रहः। शुद्धत्मेव शिवायास्तु तवायमचलाधिपः ।।६४।। किंचिच्चान्तरमुल्लंघय प्रसन्नेनान्तरात्मना। प्रत्यासन्नजिनास्थानं विदामास विदांवरः ।।६६।।

हे देव, जिसका उदार शरीर शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल है ऐसा यह पर्वतराज कैलास शुद्धात्मा की तरह आपका कल्याण करनेवाला हो ।।६४।। विद्वानों में श्रेष्ठ भरत चक्रवर्ती प्रसन्न चित्त से कुछ ही आगे बढ़े थे कि उन्हें वहाँ समीप ही जिनेन्द्रदेवका समवसरण जान पड़ा ।।६६।।

सन् १८०६ में भूटान निवासी लामचीदास गोलालारे नामक व्यक्ति ने चीन, वर्मा, कामरूप एवं अष्टापद कैलास की तीर्थ यात्रा

की थी। जिनमें उन्हें १८ वर्ष लगे। उन्होंने अपनी यात्रा का वर्णन मेरी कैलास यात्रा नामक पुस्तिका में किया है जो इस प्रकार है—

अथ श्री कैलाश पर्वतजी का पत्र लिख्यते। यात्रा निमित्त क्षत्री लामचीदास सूर्यवंशी गोलालारे जैनी दीक्षा समय के पूजक अथवा पंडित सो आगम पढ़ (बीच) ताने अनुसार विक्रम सवत् १८०६ हिन्द महान मुल्क ताकि ईशान दिशा हिमालय पर्वत के समीप भूटान देश में गिरमध्यनगर वासी सो ब्रह्मा, चीन की सैर के निमित्त अथवा दर्शन निमित्त यात्रा को चले। सो कठिन व्रत धर के कैलाश के दर्शनों की अभिलाषा करी क्योंकि पक्षी अपने पंखों के बल से निरंजनपुरी देखना चाहे सो वहां देखिये। आखिर अपनी यथाशक्ति से ऊंचा उड़ेगा तो मरण ही होगा। सो मैं तुच्छ वुद्धि धर्मयोग शुद्ध मन कर अपने गृह का मोह छोड़ अपने राजा बलवीर्यसिंह बोद्धमती सूर्यवंशी को छोड़ अथवा अपने भूटान देश गिरमध्यनगर महा सकलकुटुम्ब धर्म समीपी मित्रों को छोड़ प्रथम चल कोस १५० में कामरू देश और वामरू नगर तामें गये जहाँ जादू-मंत्र विद्या का प्रचलित जोर है तहां से चल पूर्व और ब्रह्मा मुल्क में किरीठमदेश कोसीनगर कोस ४०० चलके गये, तहां की स्त्रियाँ मुलम्मे का काम बहुत अच्छा करे है शरम हिजाब नाहीं। तहां से पूर्व ओर चले, ब्रह्मा मुल्क में मध्यप्रदेश कोस २०० आवा शहर में गये इस मुल्क के बादशाह का तस्त इसी नगर में विराजे है। सकल देश और राजा बौद्धमती है, तहां से चल पूर्व ओर ब्रह्मा मुल्क में कपूरीदेश केशवनगर कोस ३५० गये, तहां सुगंधित असली अगर तगर कपूर कोइमा (भीमसेनीकपूर) बहुत है। यो सुगंध और जगह १००) तोले में नहीं है और वहां के पहाड़ों में साने रूपे की खानि है। तहां से चल पूर्व और इसी मुल्क में कोची न मुल्क की सीमापर व्हावल पहाड़ ताके घाटेपर हेवानगर कोस २५० गये ओर इस पहाड़ी पर बाहुबलीजी

की प्रतिमा कायोत्सर्ग खड़े योग बड़ी-बड़ी ऊंची जगह-जगह हैं सो यहाँ के बौद्धमती उनको बाहुबयी गुरू अवतार अपना जान कार्तिक बदी का बड़ा मेला जोड़कर पूजे हैं। उन प्रतिमाओं का एक हाथ उपदेशरूप उठा जानना, तहां से चल कोचीनमुल्क, वीदमदेश होवीनगर उठा जानना, तहां से चल कोचीनमुल्क वींदमदेश, होवीनगर कोस ६०० गये। इस मुल्क का राजा इसी नगर में राज करे है और सकल मुल्क बौद्धमती है। .... सो इन छहों चीन में आठ तरह के जैनी देखने में आय हैं खास चीन में तो तुनावारे जैनी हैं। कोरिया चीन में पातके हैं और घघेलवाल, वाधानारे जैनी हैं। तिब्बत चीन में सोहनावारे............ फिर वहाँ से चल तिब्बत ही में दक्षिण दिशा की ओर कोस ८० गये वहां सुन्दर नानाबन तामें मानसरोवर तहा सुन्दर ताल तिसमें तरह-तरह के पक्षी कलोलरूप चकवा चकवी महा मोह के भरे केल करे हैं, ताही वन में दाड़म अखरोट, अमरूद आलुबुखारा अथवा सकल सुगंध भरे फूल होय हैं, मानसरोवर में महा सुन्दर कमल खिल रहे हैं सो उस बन के किनारे पर सिलवन नगर है, ताफा कोट कोस १६ का हैना बाजार कोस दो दो के जानने, उस नगर जैनी जैन पन्थी बसे हैं, तहाँ हम एक वर्ष रहे । और हम दीक्षा समय के पूजक उनके आगम सुन ग्यारह प्रतिमा के धारी भये....... सो एक सुहावना थल मानसरोवर की उत्तर की ओर पड़ा है। तहाँ कभी पवनंज जयकुमार, हनुमान के पिता अपने नगर से चल रावण की मदद को लंका जाती बार उस स्थल पर डेरा कर रहे थे। सो यह बात वहाँ के मनुष्य हमसों कहते थे। अब उस वन में जीवों का बहुत भय है, सो पन्चमकाल है, हमने जान बेच दर्शन किये थे और वह तीनों अटाई को ५५ चैत्यालय का बहुत मेला भरे है, परन्तु जीव का भय रहे है। तहां से चल चीन की सीमा मांहि दक्षिण दिशाकी ओर हनुवर देश में दस पन्द्रह कोस पर हमको कई पंथियों के तथा

बीसपंथियों के बहुत नगर मंदिर आये। सो हमको सब रोकते भये- तुम आगे कहां जाओ हो, आगे जाने का ठिकाना नहीं हैं, बनबेलें बहुत खड़ी हैं वन उद्यान पड़े हैं, पहाड़ों में रास्ता नहीं पावे है, कैलाश के दर्शन कठिन हैं, मनुष्य का जाना इस समय दुर्लभ है, सो तुम मत जाओ, पर हमने किसी की एक न मानी......... वह वन कैलास की दक्षिण की ओर तले तले पूर्व पश्चिम लम्बा कोस ६००, उत्तर दक्षिण चौड़ा कहीं २० कोस, कहीं ४० कोस, कहीं ८० कोस जानने और वह हनुवरदेश नगर राजा प्रजा सब जैन जानने, वहां के श्रावक राजा सूर्यवंशी चन्द्रवंशी क्षत्री हैं, जैनके मंदिर उस देश में लाखों है। घर इस नगर में १५०० हैं सो कोई दो उज कोई ३ गज का ऊंचा खाली शिखर है, चौक द्वारा नहीं है और कोई मंदिर उनमें महादीरघ शिखरबन्द बिराजे वेदी, रत्नजड़ित हैं मंदिर महाननोज्ञ हैं, बिम्ब शुद्ध विराजे वेदी, रत्नजड़ित हैं मंदिर महाननोज्ञ हैं, बिम्ब शुद्ध विराजे हैं—वेदी सुवर्ण रत्नमई है चौदह मणि रत्न लाल रत्न ये चार पाईये हैं। उस देश के मनुष्य उस वनके जीवों से भयवान रहें हैं। सकल नगरों के कोट हैं सो एक पहरदिन से नगरों के द्वार भिढ़ जाय हैं, और उस देश के अथवा नगर के श्रावक हमको देख सब रोकते भये यो बनमें मत जाव, कदाचित् मर जाव और कहने लगे तुम क्यों बावरे भये हो इस वन में कोई जीव सिंह, सार्दूल तुमको भख जायगा तातें हमको कैलाशजो दर्शन १२ मास यहां ही ते होय हैं, सो तुम प्रभात के समय करना, क्योंकि यहां तें ४० कोस तक तो वन है, आगे योग १ सागरगंग दरिया है और ३२ कोस ऊंचा कैलाश है, सो इस ऊँचाई पर कुछ दूर नहीं है, कैलाश के दर्शन तो सौ सौ कोसतें होय हैं यहां तो कभी कभी मंदिरों के चिन्ह भी हिममे दबे हैं सो जब हिम ग्रीष्मऋतु में खिरे है, तब दिखाई दे हैं, सो तुम दर्शन यहां ही से करो आगे मत जावोसो हमने एक न मानी, तब श्रावक

चुप हो रहे। हम दर्शनों की अभिलाषा के वश होय नाहर के मुख हाथ घाल विगत प्राण देने से बेडर हो मूढ़मति विचारी, यो न जानां कि आगे सागरगंग नाला है। चार कोस गहरा चौड़ा जहाँ घाटका निशान नहीं किस विध उतरेंगे। आगे कोस ३२ ऊंचा गिर फिर पर्वत की आठ पैडी एक-एक योजन की ऊंची सौ किस विधि चढ़ेगे, परन्तु अपना मरण मान दर्शनयोग वहां से चल सहज-सहज मारग प्रभू की अतिशय से उस बन के पार भये। आगे सगरगंग नालापर जाय वीतराग भाग धर खड़े जोगध्यानधर इस विधि आंखड़ी लई कि जब लों कैलाश के दर्शन नहीं होंगे तबलग आहार, पानी त्याग और सन्यासमरण यहां ही करूंगा और कदाचित् दर्शन हो भी जाय तो और २३ महाराजकी निर्वाण भूमि के दर्शनकर वस्त्र दूर करूंगा, मुनिव्रत धारूंगा, परिषह सहंगा कदाचित् न टरूंगा, वस्त्रत्याग शीतघाम सहूँगा, इस तपस्या में आहार पानी के त्यागने से दिन ४ भये तब एक व्यंतर कहा दयावान मनुष्य का रूपधर हमसे कहता भया तुम कौन हो तब हम कहीं प्रभु के पायक हैं। कैलास के दर्शन करेंगे तब वह व्यतंर बोला हे मूर्ख तू बावला है कैलास के दर्शन कैसे करेगा? जा, यहां से कैलास के दर्शन नहीं होंगे। तब हम फेर कही हे महाराज तुम कौन हो जो हमको क्रूर भये हमको बावला कह धक्का देओ हो, और डराओ हो सो मैं बावला नहीं हूं। तुम जो हमको भगवान के दर्शनको मना करो तुम हीनधर्मी हो। तब व्यंतर फिर बोला, हे भाई तू अजान है यह सगरगंग है ४ कोस गहरा है। चौड़ा नाला है, आगे ३२ कोस ऊंचा गिरि है। तुमको दर्शन कैसे होंगे? तब हम कहीं हो सो तुम जाओ बोलो नहीं फिर उन हमको तपस्वी जान दयाभावकर कहा तू आंखमींच तब हमने आंख ढापी (मींची) तब हमको कैलाश पर्वतपर ले जाय सकल दर्शन कराये, पहर दोय में हमको उसी जगह छोड़ गया और दर्शन के वक्त वह व्यंतर सकल

भेदवस्तु बतावता भया। मंदिरों की उत्पत्ति टोंक अथवा मेवा, वनस्पति, धातों की खान, मुनोंकी निर्वाण भूमि, प्रतिमाओं आकार सकल भेद कहां, सो हमको जब वह उसी जगह पर छोंड़ गया तब हम पूंछी महाराज कौन हो उन कही मैं व्यँतर हूँ, खबरदार! किसीसे कहना नहीं-इतना कह रम गया। सो कैलाश के दर्शन हमने किये, अच्छीं तरह किये, मन आनन्द भयो भव्य दर्शन करो, अष्टकर्म-बंध छूट जायेंगे निश्चित जानने। सो दर्शन हमने ऐसे किये, प्रथम तो ऋषभदेव का टोंक बन्दा सो सुवर्ण मई जड़ाऊ जोग बन रहा है, महामनोज्ञ है, गुम्मजदार है, टोंकमें चरण बन रहे हैं, महा सुन्दर हैं, दिव्य उद्योत को करें है श्वेतवर्ण रत्नमई गुम्बजकी चोटी है। सो टोंक दक्षिण दिशाकी ओर सोने की खानिपर है ८०० धनुष ऊंचा टोंक विराजे है, महिमा वरणी जाती नाहीं। सो टोंक भरत जीका बनाया देवाराधित मरम्मत रहे हैं। फिर वहां से चल ७२ मंदिर बंदे सुवर्ण मई, रूपामई, और तांबामई धतुमई बंद उनमें एक मंदिर भरत जीका बनाया रत्नमऊ जड़ाई है, ऊंचा १००० धनुष मंदिर ६०० धनुष का, गुम्बज २०० धनुषकी, चूलका १०० धनुषकी, कलश रत्न जड़े महासुन्दर हैं, तहां तीन तीन चौवींसी की ७२ प्रतिमा अतीत अनागत वर्तमान, काय यथायोग्य संयुक्त जैसा उनका शरीर तैसे ही धनुषकी प्रतिमा रत्नमई देवाराधित दिव्य उद्योत को धरे बिराजमान हैं सो जैसे कायका रंग तैसे ही रत्नों की प्रतिमा विराजे हैं। महासुन्दर हैं, तिनको बारम्बार मेरा नमस्कार हैं। इस मंदिर में ८४ जातिके रत्न जड़े हैं प्रतिमा पद्मासन हैं और वे ७२ मंदिर और बनाये अथवा भरतने बनाये अथवा भरत के पुत्रों ने बनाये प्रतिमा रत्नमई, सुवर्णमई धातुमई पाषाणमई बहत्तर जाननी सो उन ७१ मंदिरों में से ३ मंदिर सुवर्णमई, १० रूपमई और ३६ मंदिर तांवामई २२ मंदिर धातुमई सब मंदिरोंपर देवाराधित मरम्मत रहे हैं, सो हमने दर्शन या विधि मनवचनकाय से

किये फिर मुनों की निर्वाण भूमि बंदों सो कैलाशगिरी के ऐसे चित्र देख आया हूँ। उत्तर दिशा को रूपे की खानि है, पश्चिम दिशा में पाषाण की खानि हैं, दक्षिण दिशा की ओर सोने की खानि है, पूर्व दिशा की ओर तांबे की खानि है, अथवा और जंगलों में कई धातु की खानि है चारों दिशाओं में एक एक योजना के आठ सिवान है। सो गिरिका नाम अष्टापद भी है, गिरिका चक्र योजना चालन की परिक्रमा है महासुन्दर है। तहां बनबेल प्रज्वलित ऊपर बहुत खड़ा है, सो हिम का कारण गिरि की कटनियों में है। सकल मंडलों में महादीरध है, नन्दनबन समान महासुन्दर है, उद्योतरूप है, बीच में तालाब है, जल अगम्य है, क्षीर समान है। कमल फूल रहे हैं परन्तु हिम आच्छादित है, कटनी भीतर चकवा चकवी हंस सारस अनेक पक्षी कलोल करें हैं, सकल मेवा वानरचली सुगंध भरी फल फूल रही है, सकल जाति के पुष्प छहों ऋतु के खिले हुए अति सुगंध भरे सोहे हैं और आठ प्रकार के व्यंतर दर्शन के निमित्त आवे हैं, मंदिरों में रहें हैं। सो कैलाशगिरि पर्वत मेरुगिरि के समान हैं, देव रमणीक क्षेत्र है, नीके जानने, पूर्ण ज्योति है, महा उद्योत है और जो मंदिरजी प्रतिमा टोंक पर्वत की महामहिम देख आया हूँ, सो वर्णन नहीं कर सकता हूं, क्योंकि जो दर्शन मैं वहां कर आया था वह ज्ञान यहां नहीं रहा । सो कैलासकी महिमा कौन कर सके, कैलासकी चोटी बीच में ८ योजन ऊँची है सम भूमिते है। सो किनारों पर है, जड़ में जीवों की बधवारी बहुत है। सार्दूल अष्टापदसिंह और मृगादिक केहरी रीछ और चीता, सूमना डांकल, विकराल, अजदहा, दीरघ बिच्छू और बहुत जीव भयंकर रूप के जहर के भरे हुए वहां तले बहुत तिप्टें हैं विचरे हैं। कई जाति की वहां मणिभी पाइये हैं। चिन्तामणि, पद्मरागमणि, लालमणि, सर्पमणि, सर्पसंयुक्त रहे हैं, उस पर्वत पर चौथे काल समान समय रहे है। आदीश्वर के समयसे आजलों महा

रमणीक क्षेत्र है, परन्तु हिमसे आच्छादित है। दर्शन कठिन है संहन नहीं, एकसा समय बीते है, बीतेगी, प्रलय के समय गिर जायेगी। से मैं उस नाले ऊपर से चल उसी मारग आया था उसी मारग होय एक पद भैरव रागनी में बनाया । दर्शनों का फल सकल जैनियों को लिखवाता हुआ अथवा याद करावाता हुआ वर्ष १८ माहिं अपने देश आये। वर्ष १ में धर्मशालाओं में ठहरे सो अपनी पहली आखिरी याद कर जो तुमने सगरगंग नाले पर आखिरी लई थी, कि जो दर्शन हो जायेंगे तो हम २३ भगवान की निर्वाणभूमि के दर्शनकर वस्त्र दूर करेंगे सो अब कीजिये। सो हम अपने देश से चल प्रथम तो शिखरजीके दर्शन करते हुए चम्पापुर, पावापुर, राजगृही, कजलीवन, रेवातट और सब जगह दर्शन करते हुए पश्चिमी दिशा की चले प्रथम सोनागिर, मक्शीपार्श्वनाथ, आवुगिरि विन्ध्याचलवन, बड़वानीजी, सतपुरी गिरि मांगीतुंगी जी साद्रिगिरि, गजपंथाजी, गिरनारजी वंदे, फिर वहां से दक्षिण और भावन गर फिर गोमट्टस्वामी तिलंगदेश द्राविड़देशे कर्नाटक देश के चैत्यालय बंदे। तहांसे चल दक्षिणदेश होते हुए नैऋत्य कोन की ओर फिर जैनबद्री नगर में जाय अपनी यात्रा का समुच्चय कथन १०४ पत्र लिखाय बड़े बड़े देश में भिजवा दिये। जैसे कौशल देश, कुरजांगल देश। सो सकल यात्रा वर्ष २२ लोंकरी। से इस यात्रा को श्रावक भविजन हो सो निश्चय जानो, इस भांति यात्रा करी है।

गिरि कैलाश के दर्शन कीजे जासो होय निस्ताराज।।टेक।।
भोटानदेश से चल रस्ते में जिनमत अधिक आपाराजी।
तरह की आम्नाय देखी बिम्ब रत्नमई सिंहाराजी।।१।।
नौ हजार सत आठ चौरान कोस चले पग धाराजी।
गही भूमि पैरनसे यात्रा पहुँचे गंग ऊपराजी।।२।।

धरो ध्यान नहीं आहार आ खड़ी बीतगए दिन चाराजी।
एक व्यंतर ले गया हमको किया दरश पाय निर्वाराजी।।३।।
प्रथम टोंक ऋषभको बन्दों सम्यक्ज्ञान चिताराजी।
फेर सुवर्णमई मंदिरबंदे बिम्ब रत्नमई राजेजी।।४।।
ताकी महिमा वरणी न जाई नहीं बुद्धि भेद कहुं साराजी।
दोय पहर में वह व्यन्तर ने छाँड़ो गंग किनाराजी।।५।।
जिस रास्ते से गमन किया था उन रतों उलटानाजी।
वर्ष १८ में उल्टे फिर आयो देश मंझाराजी।।६।।
वर्ष चार फिर हिन्दू महनमें दर्शन निर्वाण पधाराजी।
जैन मूलबद्री तक पहुंचे छांड़ा मोह सुसाराजी।।७।।
संवत् १८२८ साय भए नझ ब्रह्मधाराजी।
लामचीदास प्रभु दंडकवन में तुमरे नाम अधाराजी।।८।।

नोट— ब्र० लामचीदासजी ने सवत् विक्रम १८२८ में दंडकदेश और इकवन में उत्तर ओर जाय वस्त्र त्यागे एक मुनिराय त्रिषणनाम तिन गुरुसे रक्षा ली, लोंचकर नग्नमुद्रा। धरि मुनिवत लेख खड़ा योग ध्यानकर मौनसहित प्राण त्यागे।

पत्र का नोट— श्रावक सर्वजनो संशय न करनी, श्रावक जो जाय सो अपनी सम्यक्त सो दर्शन करो, जाने में भ्रम न करना, जरूर दर्शन होंयगे। शास्त्रजी में ऐसा कहा है कि अयोध्या जी से उत्तर की ओर कैलाशगिरि १६०० कोस है, सो सत्य है हम मारगका फेर खाते हुए प्रथम पूर्व ओर, उत्तर ओर, फिर पश्चिम ओर, फिर दक्षिण ओर ९८९४ कोसलों गये आये कैलास तिब्बत चीन के दक्षिण दिशा में हनवर देश में पर ले किनारे पर है। ताकी तलहटी में उत्तर की

ओर धीधर बन जानना........ सो चिट्ठी लिखित लामचीदास संवत् १८२८ मिती फागुण सुदी ५ रविवार को पूर्ण करो इति।

लामचीदास जी ने अपने इस लेख में चीन, वर्मा, के जिन मन्दिरों का वर्णन किया है जो जापानी विद्वान ओकाकुरा के उल्लेख से भी प्रमाणित होता है—— "At one time in a single province of Loyang (China) there were more then three thousand monks and ten thousand Indian families to impress their national religion and art on Chinese soil." Marcopolo ने भी लिखा है— Chinese town Canton had a temple of five hundred idols with the dragon as their symbol. उन्होंने वर्मा में बाहुबली की मूर्ति का वर्णन किया है जो आज भी वहाँ बाहुबही पगोड़ा के रूप में है। जिसके विषय में ऐतिहासकार फर्ग्यूसन ने लिखा है— "The Baubaugigi Pagoda in prome consist of a solid mass in brick work of cylindrical form about 80 ft high, raised on a triple base and surmounded by a finial carrying the Hti or umbrella. It is ascribed to the 7th and 8th century" - (History of Indian & Eastern Architecture. Pg. 342 of Vol II) लामचीदास के अनुसार तिब्बत में भावरे और सोहना जाति के जैनी रहते थे। उन्होंने तेले की तपस्या कर यक्ष की सहायता से अष्टापद तीर्थ के दर्शन किये थे जिसके विवरण में उन्होंने बताया है कि ऋषभदेव के टोंक में चरण बने हुए है। इसकी पुष्टि स्वामी आनन्द भैरव गिरि जी ने श्री क्रीट भाई को लिखे पत्र में की है जिसमें उन्होंने अपनी कैलास यात्रा के विषय में लिखा है जिसको हूबहू यहाँ दिया जा रहा हैं।

Dear Kiritbhai,

As you asked some question about Astapad, I am giving the information as you desired.

First thing, in Jain literature Kailas is called Astapad. In my views Kailas and Astapad is same.

Adinath Vrishabhadeva, the first Tirthankar of Jainism was said to have attained Nirvana at Kailas. It is said Adinath walked 8 steps in Astapad cave, where the footprints are there and now covered with 8 vedi (small) made by simple stones at 21000' height. As such people try to go to this cave which is at Kailas mountain only. It is too risky and dangerous to go, very strenuous. Some time you are to climb mountain. Unless you know the spot it is not possible to recognize the cave. Very rare people go there. I believe hardly few people could reach there. Very beautiful cave and warm, no wind and snow inside the cave. Before sunset the sunrays directly entered in the cave. I was there for an hour between 5.30 P.M. to 6.30 P.M. (Indian time).

Since it is at so much of height, clear sunrays comes there in the evening time and darkness do not come, I think before 7.30 P.M. Some people can see the Astapad cave from Gengta gompa top since it is visible from there, but must be guided by the known people. I believe all Tibetan have not visited Astapad. I started at 6.00 o'clock (Indian time) from the Tarchen without any guide and taken oath "do or die", I must touch Kailas in this yatra. I reached at

gengta gompa at 8 o'clock and meet two lamas over there . I approached lamas with folded hands for Astapad parikrama. The senior lama smiled and asked the junior lama to go alone with me.

They offered me Tibetan tea and then we started. The lama took my handbag wholeheartedly; I was free to walk, Due to deficiency of oxygen, I felt very tired. After crossing 2 peaks towards west, we reached Serulung gompa crossing the chhuksam chhu (river) which comes down to Tarchen. From Serulung gompa glorious vision of lord Kailas are open and I was to get senseless like. In Serulung gompa (very small 2 rooms only) one very old lama is there. I can not forget his holy hearted hospitality, though nothing was with him except Tibetan tea and frozen yak milk (called loseye). Only 15 mts. we were there and left for Astapad. On the right side is chhuksam chhu; in left is Ravan parvat. Just opposite of Ravan Parvat big flagstaff (Mahadhawja) and Nyanri gompa. On the peak of Ravan Parvat, a big beautiful Sivaling is there. It can be seen from some kms. distance. The area is fully covered with huge snow. While walking, I found 4 peacocks roaming (it is very big one) and after walking 1/2 kms. We found mountain colour musk deer (total no. approx 30 or so). Again after walking 1/2 km. at high trekking we found about 15-20 nos Peacocks just about 50 ft. distance, after another 1/2 km 50/60 musk deer we found in snow colour. Thereafter no such events

were visible. Now we started to climbing mountain in so many place. Too much cold, body shaking with great difficulties and with the help of holy lama, I came across the dangerous climbing and reached just below the ladder looks in Kailas where the heap of snow is stagnant. While crossing this stagnant snow range, a big about some tones snow piece came down with roaring sound. We escaped by the grace of lord Kailas. Hereafter the entire route was climbing, tough and dangerous. We crossed it and reached Astapad cave. Very very very beautiful place. If there were no restriction of international boundary, I could have stayed there till the last day of my life. If has got a spiritual vibration, feelings. I can not express the same in wiriting.

In this year, I could not collect camera from anyone. As a result, I had to start without camera and I do not have a single photograph.

If there is any heaven, the Kailas is such, having a divine atmosphere.

Now you could realize the difficulties for what I am unable to send the valuable photographs of close Kailas and Astapad I believe lord does not desired that this glorious vision should go to anyone what he exposed before me. A huge number of hanging crystals rods are there which can not be touched. While coming back and crossed the Kailas peak and Parvati peak for down about 2 kms. Looking this big well I afraid of as to how I shall get down. By the grace

of the lama I could get down in a heap of snow wall. It is only possible by the mountaineer with sufficient equipment, that too with blessings of Lord Kailas.

A good devotee can enjoy the blessful and beautiful vision of Lord Kailas at Astapad and it's surroundings. If there is any love, peace and truth in the world that is here. Materialistic life is nothing to this holy place. I am graceful to the Lama, who took me to there and he is nothing but Lord Shiva in disguise of Lama. Touching of Lord Kailas is the greatest assets in my human life. Now I have no other desires in life, because my realization, sense of thrilling vibrations is my final achievements in this Kailas yatra.

अष्टापद पर चढ़ना साधारण मनुष्य के लिये बहुत ही असम्भव है। अष्टापद कैलास को बहुत ही पुज्य और पवित्र माना गया है। इसकी पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिये इस पर चढ़ने की कोशिश सामान्य आदमियों के लिये वर्जित है।इस विषय में Herbert Tichy का यह अनुभव दे रहे हैं जिसमें उन्होंने कैलाश पर चढ़ने का असफल प्रयास किया था और उनका क्या अनुभव रहा यह बताया हैं। "Herbert Tichy during one of his travels in Tibet could not resist the temptation of climbing Kailas. All attempts by his sherpa Nima to deter him from undertaking such an attempt failed and he started climbing alone. It was a 'lovely day' according to him. Herbert Tichy in his book 'Himalaya' writes "I was still a long way from the summit when the clouds came up from the Valleys and enveloped me in an icy gray pall. Soon, I was being lashed by gigantic

hailstones, and unable to fine a single hospitable rock behind which to shelter. I beat an ignominious retreat. Back at our camp Nima gave me a broad grin and positively enjoyed telling me that down at the camp there had not been a spot of rain the whole day indeed the earth was bone dry . Yet the mountain was still swathed in a great black cloud that was like a warning to stop frivolously desecrating the realms of God. That sacred mountain are no joke was something I learned" (Eternal Himalaya)

आध्यात्म योग और तपस्या का महत्व बहुत होता है और इसके द्वारा अष्टापद के दर्शन करके अनेको पुण्य आत्माओं ने अपने को धन्य किया है जिनमें सहजानन्द जी का नाम उल्लेखनीय है इस सन्दर्भ में यह वृत्तान्त महत्वपूर्ण है........ "बंगलोर की सविता बेन छोटू भाई ने हम्पी जाकर कई दिन साधना की तब गुरूदेव सहजानन्दजी ने उनसे जो कहा वह सद्गुरू संस्मरण पत्रांक ८८ में लिखा है— मैंने पूज्य गुरुदेव से कहा कि सुगन्ध के साथ किसी के होने का अनुभव किया। तब गुरुदेव ने कहा कि वह तो ऐसे ही हुआ करता है। तुमको कोई साक्षात् दिखायी दे और पूछे कि तुम्हें क्या चाहिये तो कहना कि तुम्हें महाविदेह क्षेत्र के सीमन्धर स्वामी के दर्शन चाहिये। इतना मांगना। ऐसा गुरुदेव ने कहा था............वैसे तो मैं शास्त्राभ्यास करती हूँ जिसमें मुझे अष्टापद के विषय में समाधान नहीं हुआ था। गुरुदेव से मैंने प्रश्न पूछा तब गुरुदेव ने उनको जो अष्टापद प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे उस अनुभव की बात कही कि अष्टापद पर तीन चौबीसियां हैं बहत्तर जिनालय हैं। भूत, भावी और वर्तमान रत्न प्रतिमाएं हैं। जिन्हें भरत राजा ने बनवायी है। यहाँ अपने पास जो परम कृपालु देव की पद्मासन प्रतिमा है उससे थोड़ी बड़ी है।"

आन्ध्रप्रदेश की राजधानी हैदराबाद से ४५ मील उत्तर पूर्व में कुल्पाक तीर्थ हैं जिसका वर्णन विविध तीर्थ कल्प के अन्तर्गत माणिक्य देव कल्प के रूप में प्राप्त होता है। इस तीर्थ का पौराणिक इतिहास अष्टापद से सम्बन्धित है जो इस प्रकार है........... पूर्व काल में भरत चक्रवर्ती ने अष्टापद पर्वत पर जिन ऋषभदेव की माणिक्य की एक प्रथक प्रतिमा निर्मित कराई थी जो माणिक्य देव के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह अत्यन्त प्रभावशाली प्रतिमा है। कुछ लोगों का ऐसा भी मानना था कि भरतेश्वर की मुद्रिका में स्थित पाचिरत्न से यह प्रतिमा बनायी हुई है। इस प्रतिमा की पूजा चिरकाल तक अष्टापद में हुई। उसके बाद इस प्रतिमा को सर्वप्रथम विद्याधरों ने, फिर इन्द्र ने, उसके बाद रावण ने अपने-अपने यहाँ लाकर उसकी पूजा की । लंका दहन के समय यह प्रतिमा समुद्र में डाल दी गयी और बहुत काल बीतने पर कन्नड़ देश के अन्तर्गत कल्याण नगरी के राजा शंकर ने पद्मावती देवी के संयोग से उक्त प्रतिमा प्राप्त की और उसे तेलंग देश के कुलपाक नगर में एक नव निर्मित जिनालय में स्थापित कर दी और उसके व्यय हेतु १२ ग्राम प्रदान किये।

अष्टापद पर्वत ऋषभदेवकालीन अयोध्या से उत्तर की दिशा में अवस्थित था। भगवान् ऋषभदेव जब कभी अयोध्या की तरफ पधारते, तब अष्टापद पर्वत पर ठहरते थे और अयोध्यावासी राजा-प्रजा उनकी धर्म सभा में दर्शन-वन्दनार्थ तथा धर्म-श्रवणार्थ जाते थे, परन्तु वर्तमान कालीन अयोध्या के उत्तर दिशा भाग में ऐसा कोई पर्वत आज दृष्टिगोचर नहीं होता जिसे अष्टापद माना जा सके। इसके अनेक कारण ज्ञात होते हैं, पहले तो यह कि भारत के उत्तरदिग्विभाग में रही हुई पर्वत श्रेणियां उस समय में इतनी ठण्डी और हिमाच्छादित नहीं थीं जितनी आज हैं। दूसरा कारण यह है कि अष्टापद पर्वत के शिखर पर भगवान् ऋषभदेव, उनके गणधरों तथा

अन्य शिष्यों का निर्वाण होने के बाद देवताओं ने तीन स्तूप और चक्रवर्ती भरत ने सिंह निषद्या नामक चैत्य बनवाकर उसमें चौबीस तीर्थंकरों की वर्ण तथा मनोपैत प्रतिमाएं प्रतिष्ठित करवाके, चैत्य के चारों द्वारों पर लोहमय यान्त्रिक द्वारपाल स्थापित किये थे। इतना ही नहीं, पर्वत को चारों ओर से छिलवाकर सामान्य भूमिगोचर मनुष्यों के लिए, शिखर पर पहुंचना अशक्य बनवा दिया था। उसकी ऊँचाई के आठ भाग क्रमशः आठ मेखलायें बनवाई थीं और इसी कारण से इस पर्वत का अष्टापद नाम प्रचलित हुआ था। भगवान् ऋषभदेव के इस निर्वाण स्थान के दुर्गम बन जाने के बाद, देव, विद्याधर, विद्याचारण लब्धिधारी मुनि और जंघाचारण मुनियों के सिवाय अन्य कोई भी दर्शनार्थ अष्टापद पर नहीं जा सकता था और इसी कारण से भगवान् महावीर स्वामी ने अपनीं धर्मोपदेश-सभा में यह कहा था कि जो मनुष्य अपनी आत्मशक्ति से अष्टापद पर्वत पर पहुँचना है वह इसी भव में संसार से मुक्त होता है।

अष्टापद के अप्राप्य होने का तीसरा कारण यह भी है कि सगर चक्रवर्ती के पुत्रों ने अष्टापद पर्वत स्थित जिनचैत्य, स्तूप आदि को अपने पूर्वज भरत चक्रवर्ती के स्मारकों की रक्षार्थ उसके चारों तरफ गहरी खाई खुदवाकर उसे गंगा के जल प्रवाह से भरवा दिया था। ऐसा प्राचीन जैन कथा साहित्य में किया गया वर्णन आज भी उपलब्ध होता है।

आदिनाथ ऋषभदेव की निर्वाणभूमि होने के कारण तीर्थों में सबसे प्राचीन अष्टापद तीर्थ माना जाता है। जिन मन्दिरों और मूर्तियों, स्तूपों के उद्‌भवों की यह महत्वपूर्ण पौराणिक पृष्ठभूमि है। जैनेत्तर साहित्य में इसे कैलाश के नाम से सम्बोधित किया गया है। जैन शास्त्रों में भी अष्टापद का नाम कैलाश बताया गया है।

"Over the high region of the Himalayas was the was to paradise, o Nirvana and the final resting place of the Jains above the vault of heaven...... Tirthankaras (Saviours) have abdicated and gone north to Kailasa and Mansarovar, where, dropping their mortal frames, they have ascended to their final abode." (Ascent To The Divine The Himalaya Kailasa Mansarovar).

आचार्य हेमचन्द्र प्रणित अभिधान चिंतामणि में लिखा है "रजताद्रिस्तु कैलासोऽष्टापद स्फटिकाचल' (अभिधान चिन्तामणि ४/९४ पृ. २५३) अर्थात् कैलास पर्वत के चार नाम है । (१) रजताद्रि (२) कैलास (३) अष्टापद (४) स्फटिकाचल। इसके अलावा और जो नाम उपलब्ध होते है वो इस प्रकार है। धन्दावास, हराद्रि, हिमवत्, हंस और इसको धवलगिरि भी कहा गया। कैलास और अष्टापद दोनों का एक ही पर्यायवाची शब्द है जिसका अर्थ है स्वर्ण या सोना। सूर्य की किरणें जब कैलास या अष्टापद पर पड़ती है तो वह स्वर्ण की भांति चमकता है।

प्राकृत में अष्टापद को अट्ठावय कहा गया है। जिसका अर्थ है स्वर्ण या सोना। कैलाश का अर्थ भी रजतशिला होता है। आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व अष्टापद का वर्णन सोने के पर्याय के रूप में बंग्ला लेखक भारतचन्द्र ने किया था— **देखते-देखते सेउति होइलो अष्टापद** अर्थात् मां अन्नपूर्णा के नौका पर विराजमान होते ही नौकापतवार आदि स्वर्णमय बन गये। कैलाश को प्राकृत भाषा में 'कईलास' भी कहा गया है। जिसका एक अर्थ राहू का कृष्ण पुद्‌गल विशेष बताया गया है। कालीदास ने अपने मेघदूत में कैलाश का कृष्ण पर्वत के रूप में उल्लेख किया है। स्वामी तपोवन ने भी कैलाश को कृष्ण पर्वत यानी Dark Mountain कहा है।

अष्टापद का अर्थ आठ पाद वाला भी होता है। अष्टापद नाम का जीव आठ पैरों वाला होता है और शेर से भी ज्यादा बलवान होता है। ऐसा अभिदान चिन्तामणि ३१० में उल्लेख मिलता है।

कैलाश तिब्बत प्रदेश में स्थित है। अष्टापद कैलाश के विषय में जानने के लिये तिब्बत के विषय में जानना आवश्यक है। प्राचीन काल से ही तिब्बत और काश्मीर के क्षेत्र को स्वर्ग कहा जाता था और मानव संस्कृति और सभ्यता का उद्गम स्थल भी तिब्बत को माना जाता है। P. N. Oak के अनुसार The term 'Tibet' is a malpronounciation of the sanskrit term 'Trivishtap' meaning paradise. The holy peak kailas, the sacred Mansarovar lake and the venetrated sources of the river Ganga, Yamuna, Saraswati, Sindhu are all in Himalayan region. The supporting Arab tradition that Adam first stepped on the earth from the heaven in India points to the fact that Tibet, Kashmir and the Himalayan foot hills may be that region which is named heaven alias Paradise and which has all associations.

Higgins के अनुसार -- The Peninsula of India would be one of the first peopled countries, and its inhabitants would have all the habits of the progenitors of man before the flood in as much perfection or more than any other nation.

इस प्रायद्वीप के उत्तर में Tienshan से लेकर दक्षिण में हिमालय पर्वत की श्रृंखला है जो पश्चिम में नांगा पर्वत से शुरू होकर पाकिस्तान, काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल, कुमायूं क्षेत्र, नेपाल, सिक्किम, भूटान, अरुणाचल प्रदेश से होते हुए पूर्व में नामचे

बरवा (७८२८ मीटर ऊँचा) तक स्थित है। यह पठार लाखों वर्षों पूर्व समुद्र से निकला था। भूगोलवेत्ताओं के अनुसार पहले इस पर्वत श्रृंखला के स्थान पर भारत और तिब्बत के बीच में तेथ्या नाम का समुद्र था। जब उत्तर और दक्षिण की भूमि भौगोलिक प्रक्रिया के स्वरूप आपस में टकराकर जुड़ गयी तब यह पठार समुद्र से निकला। इस प्रक्रिया में जहाँ-जहाँ गड्ढे और खाइयाँ बने वहां तालाब और सरोवर बन गये। भारतीय प्रायद्वीप और यूरेशिया प्रायद्वीप के टकराने से हिमालय की उत्पत्ति किस प्रकार हुई इस विषय में Dr. N.S. Virdi (scientist of Wadia Institute of Himalayan Geology) के अनुसार— The Himalayan forms one of the most important constituents of the Alpine---Himalayan mountain chain which extends from Europe through Asia Minor, Iran, Afganistan, Pakishtan, India, Napal, Burma and Joins the Indonesian mountain range, curved in a wide arc convex towards the Indian shield . The centre of this arc lies near lop Nor Lake in the Sinkiang province of China"........He further says......."The Himalayan had been thought to have developed due to the collosion of the Indian subcontinent with the Eurasian continent during the later part of the Mesozoic Era."

Dr. Virdi said that the drift continued till the end of Mosozoic Era when the intervening Ocean, the Tethys, Vanished and India started impinging on Tibet. The sediment present in the ocean were uplifted to give rise to the Himalaya.

Himalaya is still rising which is evident from the presence of river deposits hundreds of metres above the present river level.

यह सही है कि हिमालय पर्वत पहले इतना ऊँचा नहीं था। इसकी ऊंचाई धीरे-धीरे बढ़ी और आज भी बढ़ रही है।

हिमालय के विषय में ऋग्वेद (१० - १२१, ३) में लिखा है—
-

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा, यस्यं समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्ये बाहु, कस्मैं देवाय हविषा विधेम।।

It is He to whom belong these celestial snowy Heights (**यस्मे हिमवन्तो महित्वा**)- He is the lord of the sea along with the river that flow into it. These directions belong to him, wherein He has spread out His two arms. He is the God whom we should worship with our offerings. (Eternal Himalaya - Major H.P.S. Ahuwalia)

हमारे पूर्वज हिमालय के महत्त्व को जानते थे, उसके सौन्दर्य से परिचित थे और यह भी उन्हें पता था कि विश्व में हिमालय श्रृंखला सबसे ऊंची और बड़ी पर्वत श्रृंखला है। तभी उन्होंने इसे हिम + आलय का नाम दिया अर्थात् बर्फ का घर (स्थान) The abode of snow. रामायण और महाभारत से भी पूर्व ऋषि और मुनि इस क्षेत्र से परिचित थे। जैन शास्त्रों में भी इसे हिमवान क्षेत्र कहा गया जो पहले अजनाभ वर्ष कहलाता था। कालीदास ने कुमारसम्भव में हिमालय के विषय में लिखा है—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य, स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।

(कुमारसम्भव १-१)

In the Northern direction there is the noble souled (Devatma) mountain, by name Himalaya. He is the lord of all mountain (Nagadhiraj) with his two extended arms fathoming the eastern and western oceans. He stands unsurpassed as the measuring rod of the earth.

प्रलय के बाद हिमालय की उत्पत्ति एवं भोग-भूमि और कल्प वृक्ष का वर्णन जैन शास्त्रों में मिलता है। महाभारत में भी कल्प वृक्ष के विषय में प्रकाश डाला गया है— It is the realm of Gods ....this is the land of the Uttarakurus...........the treas of the Uttarakurus are always covered with flowers and bear fruit according to the will of the plucker. Plants yield milk and six different kinds of food, like nectar, clothes and ornaments. The sands are golden, possessing radiance of rubies and diamonds. The seasons are agreeable, tanks are charming, delicious and full of crystal water. Men born there are dropped from the world of celestials, of pure birth and extremely handsome; women resemble Apsaras (fairies), grow up in love, are always cheerful, free from illness and continue youthful forever.

आदि तीर्थंकर ऋषभदेव की यह तपोभूमि व निर्वाणभूमि होने के कारण यह अत्यन्त पवित्र और पूण्य स्थल माना जाने लगा। जहाँ प्राचीनकाल से अनेक ऋषि-मुनि आध्यात्मिक ज्योत को जलाने के लिये जाते रहे है। पुराणों में लिखा हैं कि जैसे सूर्य सुबह के कोहरे को दूर करता है वैसे ही मनुष्य के सब पाप हिमालय के दर्शन से दूर हो जाते है।

The Himalaya, Kailasa and Mansarovar embody a Secret truth. They are pure earth and primordial waters. In their ambience, they are the image of God and the Goddess - From them all life flows- (Ascent To The Divine The Himalaya Kailasa-Mansarovar - In scripture art and Thought).

Colonel P. T. E. Theton ने अपनी पुस्तक 'The Last Strong Holds में हिमालय के विषय में लिखा है— 'The Shrine of the Principal Hindu deities are in the Himalayas, by the Hindus they are regarded as sacrosanct and more merit is obtained by a pilgrimage to then and the snowy peaks than to any of the numerous goals of pilgrimage through out the east.....The Himalayan rigion has proved a power house of desting fro the human race.

हिमालय की भूमि अनादि काल से परम पावन पवित्र मानी गयी है। यह सम्पूर्ण क्षेत्र ही तीर्थ स्वरूप है। यहाँ पर अनेक प्राचीन मन्दिर और स्मारक थे पर आज बहुत कम रह गये हैं क्यों कि बार-बार विदेशी आक्रमण तथा उनके द्वारा की गयी लूट-पाट की वृति ने प्राचीन पूज्य स्थलों को ध्वंस कर दिया। आज भी कुछ प्रमुख तीर्थ है कैलाश-मानसरोवर, अमरनाथ-क्षीर भवानी, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनाोत्री, ज्वालामुखी, ऋषिकेश आदि जहाँ लाखों तीर्थ यात्री हर वर्ष जाते हैं।

हिमालय पर्वत श्रृंखला में कैलास एक असमान्य पर्वत है। समस्त हिम शिखरों से अलग और दिव्य । पूरे कैलाश की आकृति एक विशाल शिवलिंग जैसे है। यह आसपास के सभी पर्वतों से ऊंचा है। यह कसौटी के ठोस काले पत्थर का है जब कि अन्य पर्वत

कच्चे लाल मटमैले पत्थर के है। ये सदा बर्फ से ढ़का रहता है। कैलास शिखर को चारों कोनों के देखने से मन्दिर की आकृति बनी दिखती है। इसकी परिक्रमा ३२ मील की है। जो कैलाश के चारों ओर के पर्वतों के साथ होती है। कैलास का स्पर्श यात्रा मार्ग से लगभग ड़ेढ़ मील सीधी चढ़ाई पार करके ही किया जा सकता है जो अत्यन्त कठिन है।

मत्स्य पुराण (कैलाश वर्णनम् पृ. ३९४) में कैलाश के विषय में लिखा है—

तस्याश्रमस्योत्तरस्त्रिपुरारिनिषेवितः।
नानरत्नमयैः श्रृंगः कल्पद्रुमसमन्वितैः ।१
मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः।
तस्मिन्नवसति श्रीमान् कुबेरः सह गुह्यकैः ।२
अप्सरोऽनुगतो राजा मोदते ह्यलकाधिपः।
कैलासपादसम्भूतं रम्यं शीतजलं शुभम् ।३
मन्दारपुष्परजसा पूरितं देवसन्निभम्।
तस्मात् प्रवहते दिव्या नदी मन्दाकिनी शुभा ।४
दिव्यञ्च नन्दनं तत्र तस्यास्तीरे महद्वनम्।
प्रागुत्तरेण कैलासाद्दिव्यं सौगन्धिकंगिरिम् ।५
सर्वधातुमय दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति।
चन्द्रप्रभो नाम गिरिः स शुभ्रो रत्नसन्निभः ।६
तत्समीपे सरो दिव्यमच्छोदं नाम विश्रुतम्।
तस्मात् प्रभवते दिव्या नदीं ह्यच्छोदिका शुभा ।७

सूतजी ने कहा— उनके आश्रम से उत्तर दिशा की ओर भगवान त्रिपुरारि शिव के द्वारा निषेवित तथा कल्पद्रुमों से संयुत एवं अनेक प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण शिखरों से समन्वित हिमवान् के मध्य में पृष्ठ पर कैलास नाम वाला पर्वत है। उसमें कुबेर अपने

गुह्यकों को साथ में लेकर निवास किया करते हैं। १-२। वहाँ पर अलकापुरी का स्वामी कुबेर राजा सर्वदा अप्सराओं से अनुगत होकर प्रसन्नता का अनुभव किया करते हैं। वहाँ कैलास के पाद से समुत्पन्न परमरम्य एवं शुभ शीतल जल है।३। जो जल मन्दार नाम वाले देववृक्ष के रज पराग से पूरित रहा करता है और देव के ही सदृश है। उसी जल से एक मन्दाकिनी नाम वाली सरिता जो परम दिव्य है और अत्यन्त शुभ है वहन किया करती है।४। उस नदी के तीर पर ही वहाँ पर अतीव दिव्य एवं महान वन है जिसका शुभ नाम नन्दन है। कैलास गिरि से पूर्वोत्तर में एक अति दिव्य सोगन्धिक गिरि है।५। यह समस्त धातुओं से परिपूर्ण दिव्य और पर्वत के प्रति सुन्दर वेल वाला है। एक **चन्द्रप्रभ** नाम वाला भी वहाँ पर पर्वत है जो परम शुभ्र और रत्न के तुल्य है ।६। उसके ही समीप में एक परम दिव्य अच्छोद नाम से प्रसिद्ध सरोवर है। उस तट से एक शुभ अच्छोदिका नाम वाली नदी उत्पन्न होती है। ७।

तस्यास्तीरे वनं दिव्यं महच्चैत्ररथं शुभम्।
तस्मिन् गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः ।८
यक्षसेनापतिः क्रूरो गुह्यकैः परिवारितः।
पुण्या मन्दाकिनी नाम नदी ह्यच्छोका शुभा ।९।
महीमण्डलमध्ये तु प्रविष्टे तु महादधिम्।
कैलासदक्षिणे प्राच्यां शिवं सर्वौषधिं गिरिम् ।१०
मनः शिलामयं दिव्यं सुवेलंपर्वतं प्रति।
लोहितो हेमश्रृंगस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान् ।११
तस्यपादे महाद्दिव्य लोहितं सुमहत्सरः।
तस्मान् गिरो निवसति यक्षोमणिधरोवशी।१२
दिव्यारण्यं विशोकञ्चतस्य तीरे महद्वनम्।
तस्मिन् गिरौ निवसति यक्षोमणिधरोवशी ।१३

सौभ्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारियः ।

कैलासात् पश्चिमोदीच्यां ककुद्मानौषधी गिरिः ।१४

उस अच्छोदिका सरिता के तट पर एक अत्यन्त शुभ-दिव्य और महान चैत्ररथ नाम वाला वन है। उसमें गिरि पर अपने अनुचरों के साथ मणिभद्र निवास किया करते हैं ।८। यह यक्षों का अत्यन्त क्रूर सेनापति है जो सर्वदा गुह्यकों से परिवारित रहा करता है और वहाँ पर परम पुण्यमयी मन्दाकिनी नाम वाली अच्छौदिका शुभ नदी बहा करती है।९। यही मण्डल के मध्य में महोदधि में प्रविष्ट होने पर कैलास के दक्षिण पूर्व में शिव सर्वोषधि गिरि है।१०। मैनसिल से परिपूर्ण पर्वत के प्रति सुबेल और दिव्य-हेम की शिखर वाला - लोहित नाम वाला एक महान सूर्य प्रभ गिरि है जिसकी प्रभा सूर्य के समान है। उस पर्वत के निचले भाग में महान् दिव्य लोहित नाम वाला ही एक सर है। उसी सर से लौहित्य नाम वाला एक विशाल नद वहन किया करता है ।११-१२। उस नद के तीर एक अति महान्-दिव्य विशोका रूप है। उसमें पर्वत पर वशी यक्ष मणिधर निवास किया करता है। वह परम सौम्य और सुधार्मिक गुह्यकों से चारों ओर में घिरा हुआ रहा करता है। कैलास पर्वत से पश्चिमोत्तर दिशा में ककुद्मान् नाम वाला औषधियों का गिरि है ।१३-१४।

ककुद्मति च रुद्रस्य उत्पत्तिश्च ककुद्मिनः।

तदजनन्त्रैः ककुद शैलन्त्रिककुदं प्रति ।१५

सर्वधातुमयस्तत्रसुमहान् वैद्युतो गिरिः।

तस्य पादे महद्दिव्यं मानस सिद्धसेवितम् ।१६

तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकपावनी।

तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नामविश्रुत ।१७

कुबेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतितनयो वशी।

ब्रह्मधाता निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ।१८

कैलासात् पश्चिमामाशां दिव्यः सर्वौषधिर्गिरिः ।
अरुणः पर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुविभूषितः ।१९
भवस्य दयितः श्रीमान्पार्वतोहेमसन्निभः।

उस ककुद्मान् में ककुद्मी रुद्र की उत्पत्ति होती है। वह बिना जन वाला त्रिककूद के प्रति त्रैककुद शैल है।१५। वहीं पर सम्पूर्ण धातुओं से परिपूर्ण एक अत्यन्त महान् वैद्युत नाम वाला गिरि है। उस पर्वत के पाद में एक अत्यन्त दिव्य मानस वाला सरोवर है जो सदा सिद्धों के द्वारा सेवित रहा करता है। १६। उस सरोवर से परम पुण्यमयी लोकों को पावन कर देने वाली सरयू नाम वाली नदी समुत्पन्न हुआ करती है। उसके तट पर एक अत्यन्त विशाल वैभ्राज्य नाम से प्रसिद्ध दिव्य वन है।१७। वहाँ पर कुबेर का अनुचर वशी प्रोहित का पुत्र ब्रह्मधाता निवास किया करता है वह राक्षस अनन्त विक्रम वाला था।१८। कैलास पर्वत से पश्चिम दिशा में एक अति दिव्य सर्वोषधि गिरि यह पर्वत सम्पूर्ण पर्वतों में श्रेष्ठ वर्ण वाला और रुक्म (सुवर्ण) धातु से विभूषित होता है।१९।

अस्त्युत्तरेण कैलासाच्छिवः सर्वौषधोगिरिः।
गोरन्तु पर्वतश्रेष्ठं हरितालमयं प्रति ।२४
हिरण्यश्रृंगः सुमहान् दिव्यौषधिमयो गिरिः।
तस्यपादे महद्दिव्यं सरः काञ्चनबालुकम् ।२५
रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः।
गंगार्थे स तु राजर्षरुवाम बहुलाः समा; ।२६

उस सर से परम पुण्यमयी और अत्यन्त शुभ शैलोदका नाम वाली नदी समुत्पन्न होकर बहती है। वह उन दोनों के मध्य में चक्षुषी पश्चिम सागर में प्रविष्ट होती है।२३। कैलास के उत्तर भाग में सवेषिध शिवगिरि है। यह श्रेष्ठ पर्वत गौर हरिताल मय ही होता है। हिरण्य भृंग बहुत ही महान् और दिव्यौषधियों से परिपूर्ण गिरि है।

उसके चरणों के भाग में एक महान् दिव्य सर है जिसकी बालुका काञ्चनमयी है। वहाँ पर एक परम रम्य बिन्दुसर नाम वाला सरोवर है जहाँ पर गंगा के लाने के लिये तपश्चर्या करता हुआ राजर्षि राजा भगीरथ बहुत से वर्षों तक रहा था।२४-२६। मत्स्य पुराण के इस वर्णन में ८वें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ जिनके नाम पर कैलाश के पूर्व में एक पर्वत है। दूसरा यक्ष मणिभद्र का वर्णन जिनकी मान्यता का प्रभाव आज भी जैन मंदिरों में परिलक्षित होता है। यक्ष मान्यता जैनियों में अनादि काल से प्रचलित है। ऋषभदेव स्वामी के निर्वाण स्थल पर मणिभद्र यक्ष का वास यक्षों की परम्परा को प्राचीन जैन परम्परा से सीधा जोड़ता है जैन साहित्य में मणिभद्र यक्ष के प्रभाव सम्बन्धी अनेक वर्णन मिलते है। महुडी (गुजरात) में घण्टाकर्ण की मान्यता जैन समाज में बहुत है और यही घण्टाकर्ण बद्रीनाथ पर्वत के क्षेत्रपाल है। जिस तरह शिखर जी पर्वत के भूमिया जी, बद्रीनाथ पर्वत के घण्टाकर्ण उसी तरह कैलाश के क्षेत्रपाल मणिभद्र यक्ष है।

तिब्बती मान्यता में यह कहा जाता है कि बुद्ध भगवान ने इस आशंका से कहीं यक्षगण इसके शिखर को उखाड़कर ऊपर न ले जाएं, इसे चारों ओर से अपने पैरों से दबाकर रखा है (कैलास के चारों ओर बुद्ध भगवान के चार पद-चिन्ह हैं ऐसा कहा जाता है।) तथा नाग लोग कहीं इसे पाताल में न ले जाएं, इस डर से इसके चारों ओर सांकले बनाई गई हैं। कैलास का अधिष्ठात देवता देमछोक हैं, जो पावों के नाम से भी पुकारा जाता है। वह व्याध चर्म का परिधान और नर-मुंडों की माला धारण करता है। उसके एक हाथ में डमरू और दूसरे में त्रिशूल है। इसके चारों ओर ऐसे ही आभूषणों से आभूषित प्रत्येक पंक्ति में पांच सौ की संख्या से नौ सौ नब्बे पक्तियों में अन्यान्य देवगण बैठे हुए हैं। देमछोक के पार्श्व में खड़ो या एकाजती नामक देवी विराजमान हैं। इस कैलास शिखर के दक्षिण

भाग में वानरराज हनुमानजू आसीन हैं। इसके अतिरिक्त कैलास और मानसरोवर में शेष अन्य देवगणों का निवास है। यह कथा कडरी-करछर नामक तिब्बती कैलास-पुराण में विस्तृत रूप से वर्णित है। उपर्युक्त देवताओं के दर्शन किसी-किसी पुण्यात्मा अथवा उच्च कोटि के लामा को ही हो सकते हैं। कैलास के शिखर पर मृदंग, घंटा, ताल, शंख आदि और अन्य कतिपय वाद्यों का स्वर सुनायी पड़ता है।

वाल्मीकि० किष्किंधा० ४३ में सुग्रीव ने शतबल वानर की सेना को उत्तरदिशा की ओर भेजते हुए उस दिशा के स्थानों में कैलास का भी उल्लेख किया है—**ततु शीघ्रमतिक्रम्ब कान्तारे रोमहर्षणम-कैलामं पांडुरं प्राप्य हष्टा युयं भविष्यथ** अर्थात् उस भयानक बन को पार करने के पश्चात् श्वेत (हिममंडित) कैलास पर्वत को देखकर तुम प्रसन्न हो जाओगे।

"*Kangri Karchhak*----the Tibetan *Kailas Purana*----says, that Kailas is in the centre of the whole universe towering right up into the sky like the handle of a mill-stone, that half-way on its side is *Kalpa Vriksha* (wish-fulfilling tree), that it has square sides of gold and jewels, that the eastern face is crystal, the southern sapphire, the western ruby, and the northern gold, that the peak is clothed in fragrant flowers and herbs, that there are four footprints of the Buddha on the four sides so that Kailas might not be taken away into the sky by the deities of that region and four chains so that the denizens of the lower regions might not take it down."

तिब्बती पुराणों में कहा गया है कि चक्की के मध्यदंड की भांति भूमंडल के मध्यभाग में अवस्थित यह श्री कैलास शिखर आकाश का

भेदन करते हुए शोभित हो रहा है। इसके वर्गाकार पार्श्व भाग स्वर्ण और रत्न-खचित हैं; तथा इसका पूर्व मुख स्फटिक-निर्मित, दक्षिण मुख नीलमणि-जटिल, पश्चिम मुख माणिक्य-जटिल, और उत्तरमुख स्वर्ण जटित है। इसके शिखर सुगंधित पुष्पों और औषधियों से सुसज्जित हैं तथा शिखर पर पहुंचने के मार्ग में अमरत्व प्रदान करने वाला कल्पवृक्ष है। कैलास शिखर के उत्तर तल पर कडलुड की घाटी में एक प्रकार की औषधि होती है, जिसे खाने से कोई भी व्यक्ति सारे संसार को देख सकता है। रामायण में लक्ष्मण के घायल होने पर हनुमानजी द्वारा यहीं से औषधि लाने का वर्णन मिलता है।

शिव पुराण में कैलाश के विषय में लिखा है—

कैलासशिखरस्थं च पार्वतीपतिमुत्तमम्। यथोक्तरूपिणं शम्भुंनिर्गुणं गुणरूपिणम्।। वेदैः शास्त्रैयथागीतं विष्णुब्रह्मामानुतं सदा। भक्तवत्सलमानन्दं शिवमावाहयाभ्यहम्।।

श्री कैलाश के शिखर पर निवास करते हैं पार्वती देवी के पति है। समस्त देवताओं में उत्तम हैं। जिनके स्वरूप का शास्त्रों में यथावत वर्णन किया गया है। जो निर्गुण होते हुए भी गुणरूप है। वेद और शास्त्रों में जिनकी महिमा का यथावत गान किया है। विष्णु और ब्रह्मा भी सदा जिनकी स्तुति करते तथा जो परमानन्द स्वरूप है उन भक्तवत्सल शम्भूशिव का मैं आह्वान करता हूँ।

जैन मान्यतानुसार अष्टापद पर अनेक भव्य आत्माओं ने सिद्ध गति प्राप्त की थी। महाभारत के वन पर्व १५९ में कैलास को सिद्ध क्षेत्र बताया गया है— "Beyond Kailasa in the north is the path of the sages, narrow and perilous, seen and known only by the virtuous. भारत में प्राचीन काल से यह मान्यता चली आ रही है कि मनुष्य की मृत्यु के बाद उसका सिर उत्तर दिशा को (कैलास की ओर) कर दिया जाता है जिससे उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो। "The

sanctity of the northern quarter was preserved throughout India's past, even during the great religious debates of 6th - 4rth century BC. The differing doctrines of the polytheists and the heretics were unanimous only on the principles of transcendence, for this overcame the mundane conditions of life and death."

स्कन्दपुराण, (काशीखण्ड अ० १३) तथा हरिवंश (अ० २०२ दक्षिणात्य पाठ) में इसका भगवान् विष्णु के नाभि पद्म से उत्पन्न होना वर्णित है। देवीभागवत तथा श्रीमद्भागवत (५।१६।२२) में इसे देवता, सिद्ध तथा महात्माओं का निवासस्थल कहा गया है। श्रीमद्भागवत (४।६) में इसे भगवान् शंकर का निवास तथा अतीव रमणीय बतलाया गया है—यहाँ मनुष्यों का निवास सम्भव नहीं।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

परम रम्य गिरिबर कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू।

रामायण के बाल्मिकी काण्ड में लिखा है——

कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं परम्।
ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः।।

(वाल्मी० बाल० २४।८)

विश्वामित्र कहते हैं, राम! कैलास पर्वत पर ब्रह्मा की इच्छा से निर्मित एक सरोवर है। मन से निर्मित होने के कारण इसका नाम मानस सर या मानसरोवर है। वामन पुराण में (४४ अ०) पेज ४१६. यक्षायतन का वर्णन जैन साहित्य के वर्णन से मिलता है।

गच्छामः शरणं देवं शूलपाणि त्रिलोचनम्ः
प्रसादाद् देव देवस्य भविष्यथ यथा पुरा ।।२।।
इत्युक्ता ब्राह्मणा सद्धि कैलासं गिरिमुत्तमम्
दहशुस्ते समासीन मुमया सहितं हरम् ।।३।।

ब्रह्मा जी ने कहा तीन नेत्र वाले शूलपाणि देव की शरणागति में चलें। देवों के भी देव के प्रसाद से जैसा पहले था सब हो जायेगा। ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार कहे गये वे सब ब्रह्माजी के साथ में उत्तम कैलास गिरी पर गये और वहाँ पर उमा के साथ बैठे हुए भगवान् हर का इन्होंने दर्शन किया।

वामन पुराण भाग दो (५४ अ०) में लिखा है..........

ततश्चकार शर्वस्य गृहं स्वस्ति कलक्षणम्
योजनानि चतुः षष्टि प्रमाणेन हिरण्मयम् ।।२।।
दन्ततोरण निर्व्यूहं मुक्ताजालान्तरं शुभम्
शुद्ध स्फटिक सोपानं वैडूर्य कृतस्पकम् ।।३।।

इसके पश्चात् विश्वकर्मा ने भगवान् शिव के लिये स्वास्तिक लक्षण वाला गृह निर्मित किया था। जो हिरण्यमय था और प्रमाण में चौंसठ योजन के विस्तार वाला था ।।२।। उस गृह में दन्त तोरण थे और मुक्ताओं के जालों से अन्दर शोभित हो रहा था जिसमें शुद्ध स्फटिक मणि के सोपान (सीढ़ियाँ) थीं जिनमें वैडूर्य मणि की रचना थी ।।३।।

वामन पुराण के इन उल्लेखों में कैलाश में स्फटिक मणि की सीढ़ियों का वर्णन मिलता है जो अष्टापद में आठ सोपानों से साम्य रखता है। इसके अतिरिक्त शुलपाणि का वर्णन है। भगवान महावीर के समय भी शूलपाणि यक्षायतन का वर्णन जैन साहित्य में मिलता है।

कर्नल टॉड ने अपनी किताब Annals of Rajasthan में लिखा है.......... "इस आदि पर्वत को महादेव आदीश्वर वा बागेश का निवास स्थान बताते है और जैन आदिनाथ का अर्थात् प्रथम जिनेश्वर का वास स्थान मानते हैं उनके कथानुसार उन्होंने यहीं पर मनुष्य जाति को कृषि और सभ्यता की प्रथम शिक्षा दी थी। यूनानी लोग इसे बैकस का निवास स्थान होना प्रगट करते हैं और इसी से यह यूनानी

कथा चली आ रही है कि यह देवता जुपिटर की जंघा से उत्पन्न हुआ।"

यूनानी और रोमन लोग भी कैलास से परिचित थे। Pococke ने अपनी किताब 'India In Greece' (पेज ६८) में लिखा है Koilon is the heaven of Greeks and coelum that of the Romans. Both these derive from Vedic term Kailas----

वास्तु शिल्प के प्रमुख प्रणेता विश्वकर्मा माने जाते है। जिनके नाम से प्राप्त अपराजित शिल्प शास्त्र में महादेव और पार्वती सम्वाद रूप में ३५ श्लोक प्राप्त होते है जिसमें सुमेरू शिखर पर ऋषभदेव की भव्य प्रतिमा को देखकर पार्वती महादेव से प्रश्न करती है और महादेव जी द्वारा प्रभु का जो वर्णन किया गया वह इस प्रकार है—

सुमेरू शिखरं दृष्टवा, गौरी पृच्छति शंकरम्।
कोऽयं पर्वत इत्येष कस्येदं मन्दिरं प्रभो ! ।।

(सुमेरू शिखर को देखकर गौरी शंकर को पूछती है कि प्रभो! यह कौन सा पर्वत है और किसका मंदिर है?)

कोऽयं मध्ये पुन देंवः ?, पादान्ता का च नायिका ?।
किमिदं चक्र मित्यत्र?, तदन्ते को मृगो मृगी? ।।२।।

(उस मन्दिर के मध्य भाग में ये कौन से देव विराजमान हैं? और उनके पगों के नीचे देवी कौन है? इस परिकर में जो चक्र है ये क्या है? और उनके नीचे ये मृग और मृगी भी कौन हैं?)

के वा सिंह गजाः के वा? के चामी पुरुषा नव ?।
यक्षो वा यक्षिणी केयं ? के वा चामरधारकः ?।।३।।

(ये सिंह, हाथी, नौ पुरुष, यक्ष और यक्षिणी तथा चामरधारी ये सब कौन हैं?)

के वा मालाधरा एते ? गजारूढाश्च के नराः ?।
एतावपि महादेव !, कौ वीणा वंश वादकौ ? ।।४।।

(हे महादेव! ये माला धारण करने वाले, गजारूढ़ मनुष्य और वीणा, वंशी को बजाने वाले ये कौन हैं?)

दुन्दुभेर्वादकः को वा ?, को वाऽयं शंखवादकः ?।
छत्र त्रय मिदं किं वा ?, किं वा भामण्डलं प्रभो ! ।।५।।

(हे प्रभो ! ये दुन्दुभि बजाने वाले, शंख बजाने वाले कौन हैं? ये तीन छत्र और भामण्डल क्या है?)

श्रृणु देवि महागौरी ! यत्त्वया पुष्ट मुत्तमम्।
कोऽयं पर्वत इत्येष कस्येदं मन्दिरं ? प्रभो ! ।।६।।

(हे पार्वती देवी ! तुमने जो पूछा कि यह पर्वत कौन सा है ? किसका मन्दिर है, यह प्रश्न उत्तम है)

पर्वतो मेरू रित्येष स्वर्णरत्न विभूषितः।
सर्वज्ञ मन्दिरं चैतद्, रत्न तोरण मण्डितम् ।। ७।।

(स्वर्ण और रत्नों से युक्त यह मेरू पर्वत है और रत्नमय तोरण से सुशोभित यह सर्वज्ञ भगवान का मन्दिर है।)

अयं मध्ये पुनः साक्षाद्, सर्वज्ञो जगदीश्वरः।
त्रयस्त्रिंशत् कोटि संख्या, यं सेवन्ते सुरा अपि।। ८।।

(फिर इसके मध्य में है वे साक्षात् सर्वज्ञ प्रभु है जो तीन जगत् के ईश्वर हैं और उनकी तेतीस करोड़ देवता सेवा करते हैं।)

इन्द्रियै र्न् जितो नित्यं, केवलज्ञान निर्मलः
पारंगतो भवाम्भोधे, र्यो लोकान्ते वसत्यलम् ।।९।।

(जो प्रभु, इन्द्रियों के विषयों से कभी जीते नहीं गए, जो केवलज्ञान से निर्मल है एवं जो भवसागर से पार हो गए और लोक के अन्तिम भाग—मोक्ष में निवास करते हैं।)

अनन्त रूपो यस्तत्र कषायैः परिवर्जितः
यस्य चित्ते कृतस्थाना दोषा अष्टदशापि न ।। १०।।

(वे मोक्ष स्थित प्रभु अनन्त रूप—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य

अनन्त चतुष्ठय—के धारण करने वाले हैं, कषायों से रहित हैं और जिनके चित्र में अठारह दोषों ने स्थान नहीं किया है।)

लिंगरूपेण यस्तत्र, पुंरूपेणात्र वर्त्तते।
राग द्वेष व्यतिक्रान्तः, स एष परमेश्वरः ।।११।।

(वे वहाँ मोक्ष में लिंगरूप—ज्योति रूप में है और यहाँ पुरुष—प्रतिमा रूप में वर्त्तते हैं, राग-द्वेष से रहित ऐसे ये परमेश्वर है।)

आदि शक्ति र्जिनेन्द्रस्य, आसने गर्भ संस्थिता।
सहजा कुलजा ध्याने, पद्महस्ता वरप्रदा ।।१२।।

(ध्यान स्थित प्रभु के परिकर के आसन के मध्य भाग में स्थित कर कमलों से वर देने वाली मुद्रा में आदि शक्ति श्रुतदेवी-सरस्वती जिनेन्द्र के साथ ही जन्मी हुई उनके कुल में जन्मी हुई है)

धर्म चक्र मिदं देवि! धर्म मार्ग प्रवर्त्तकम्।
सत्त्वं नाम मृगस्सोयं मृगी च करुणा मता ।।१३।।

(हे देवी ! यह धर्मचक्र, धर्ममार्ग का प्रवर्त्तक है। यह सत्व नामक मृग और करुणा नामक मृगी है)

अष्टौ च दिग्गजा एते, गजसिंह स्वरूपतः।
आदित्याद्या ग्रहा एते, नवैव पुरुषाःस्मृताः ।।१४।।

(ये हाथी और सिंह के स्वरूप वाले आठ दिशा रूपी दिग्गज-हाथी है और ये नौ पुरुष सूर्य आदि नव ग्रह हैं।)

यक्षोंऽयं गोमुखो नाम, आदिनाथस्य सेवकः।
यक्षिणी रुचिराकारा, नाम्ना चक्रेश्वरी मता ।।१५।।

(यह आदिनाथ—ऋषभदेव भगवान का सेवक गोमुख नामक यक्ष और यह सुन्दर आकृति वाली यक्षिणी चक्रेश्वरी नामक देवी लोक में प्रसिद्ध है।)

इन्द्रो पेन्द्राः स्वयं भर्त्तु र्जाता श्चामर धारकाः।
पारिजातो वसन्तश्च, मालाधरतया स्थितौ ।।१६।।

(इन्द्र और उपेन्द्र स्वयमेव प्रभु को चामर ढुलाने वाले है। पारिजात वृक्ष और वसन्त ऋतु मालाधारण रूप में स्थित हैं।)

स्नात्रं कर्त्तुं समायाताः सर्व संताप नाशनम्।
कर्पूर कुङ् कुमा दीनां, धारयन्तो जलं बहु ।।१८।।

(कर्पूर-केशर आदि के पानी को धारण करने वाले बहुत से देव सर्व सन्ताप नाशक स्नात्र-महोत्सव करने के लिए आये है।)

यथा लक्ष्मी समाक्रान्तं याचमाना निजं पद्म।
तथा मुक्तिपदं कान्त मनन्त सुख कारणम् ।।१९।।

(जैसे लोग लक्ष्मी से परिपूर्ण अपने पद याचना करते हैं उसी प्रकार उपरोक्त देव भी सुन्दर अनन्त सुख के कारणभूत मोक्ष पद की याचना करते हैं।)

हू हू तुम्बरु नामानौ, तौ वीणा वंश वादकौ।
अनन्त गुण संघातं, गायन्तौ जगतां प्रभोः ।।२०।।

(तीन लोक के प्रभु के अनन्त गुण समूह को गाने वाले ये हू हू और तुम्बरु नामक वीणा और बंशी बजाने वाले देव हैं।)

वाद्यमेकोन पञ्चाशद् भेदभिन्न मनेकथा।
चतुर्विधा अमी देवा वादयन्ति स्व भक्तितः ।।२१।।

(ये चारों प्रकार के देव अपनी भक्ति से अनेक प्रकार के भेद से ४९ प्रकार के वाजित्रों को बजाते है।)

सोऽयं देवी महादेवी ! दैत्यारिः शंखवादकः।
नाना रूपाणि बिभ्राण एक कोऽपि सुरेश्वरः ।।२२।।

(हे महादेवी ! ये शंख बजाने वाले, दैत्यों के शत्रु हैं और एक होने पर भी अनेक रूपों को धारण करने वाले देवताओं के ईश्वर-अधिपति इन्द्र हैं।)

जगत्त्रयाधिपत्यस्य, हेतु छंत्र त्रयं प्रभो :।
अमी च द्वादशादित्या जाता भामण्डलं प्रभो :।।२३।।

(ये तीन लोक का स्वामित्व बताने वाले प्रभु के हेतु भूत तीन छत्र है और ये बारह सूर्य प्रभु के भामंडल रूप हो गए हैं।)

पृष्ठ लग्ना अमी देवा याचन्ते मोक्ष मुत्तमम्।
एवं सर्व गुणोपेतः सर्व सिद्धि प्रदायकः ।।२४।।

(ये पीछे रहे हुए देव उत्तम प्रकार के मोक्ष पद को माँगते है। इस प्रकार ये प्रभु सर्व गुणों से युक्त और सर्व प्रकार की सिद्धि को देने वाले हैं।)

एष एव महादेव ! सर्व देव नमस्कृतः।
गोप्याद् गोप्यतरः श्रेष्ठो व्यक्ताव्यक्ततया स्थितः ।।२५।।

(हे महादेवी ! यही प्रभु समस्त देवों द्वारा नमस्कृत हैं, रक्षणीय वस्तुओं में सबसे अधिक रक्षणीय होने से श्रेष्ठ हैं और प्रगट व अप्रगट स्वरूप में स्थित हैं।)

आदित्याद्या भ्रमन्त्येते, यं नमस्कर्तु मुद्यता :।
कालो दिवस-रात्रिभ्यां यस्य सेवा विधायक; ।।२६।।
वर्षा कालोष्ण कालादि शीत कालादि वेष भृत।
यत्पूजाऽर्थ कृता धात्रा, आकरा मलयादयः ।।२७।।

(जिन प्रभु को नमस्कार करने में उद्यमशील से सूर्यादि भमणकर रहे हैं। वर्षा-उष्ण और शीतकालरूपी वेष धारणकर यह काल-समय दिन और रात्रि द्वारा जिनकी सेवा करने वाला है। और जिनकी सेवा-पूजा के लिये ही विधाता ब्रह्मा ने खानें और मलयाचलादि बनाये हैं।)

काश्मीरे कुङ्कुमं देवि! यत्पूजाऽर्थ विनिर्मितम्।
रोहणे सर्व रत्नानि, यद्भूषण कृते व्यधात् ।।२७।।

(हे देवी ! ब्रह्माजी ने फिर इनकी पूजा के लिए काश्मीर में कुँकुम-केसर बनाई है और रोहणगिरि पर सभी प्रकार के रत्न जिन के आभूषण अलंकार के लिए बनाये हैं।)

रत्नाकरोऽपि रत्नानि, यत्पूजाऽर्थ च धारयेत्।
तारकाः कुसुमायन्ते, भ्रमन्तो यस्य सर्वतः ।।२९।।

(समुद्र भी जिनकी पूजा के लिये रत्न धारण करता है और जिनके आस-पास भ्रमण करने वाले तारे भी पुष्प की भाँति परिलक्षित होते हैं।)

एवं सामर्थ्य मस्यैव, ना परस्य प्रकीर्त्तितम्।
अनेन सर्व कार्याणि, सिध्यन्तो त्यवधारय ।।३०।।

(इस प्रकार प्रभु के सामर्थ्य-बल का जैसा लोक में कीर्त्तन हुआ है, दूसरे किसी का नहीं। अतः इन्हीं प्रभु के द्वारा सारे कार्य सिद्ध होते हैं, ऐसा ही देवी ! तुम जान लो!)

परात्पर मिदं रूपं ध्येयाद् ध्येयमिदं परम्।
अस्य प्रेरकता दृष्टा चराचर जगत्त्रये।।३१।।

श्रेष्ठ पुरुषों से भी जिनका रूप श्रेष्ठ-उत्तम है और वह रूप ध्यान करने योग्य श्रेष्ठपुरुषों से भी श्रेष्ठ तथा ध्यान करने योग्य है। इस चराचर तीन जगत् में इन्हीं प्रभु की प्रेरणा दिखाई देती है।)

दिग्पालेष्वपि सर्वेषु ग्रहेषु निखिलेष्वपि।
ख्यातः सर्वेषु देवेषु, इन्द्रोपेन्द्रेषु सर्वदा ।।३२।।

(सभी दिग्पालों में, सभी ग्रहों में, सभी देवों और इन्द्र उपेन्द्रों में भी ये प्रभु सर्वदा प्रसिद्ध हैं।)

इति श्रुत्वा शिवाद् गौरी, पूजयामास सादरम्।
स्मरन्ती लिंगरूपेण, लोकान्ते वासिनं जिनम्।।३३।।

(गौरी-पार्वती ने महादेव-शिव से यह वर्णन सुनकर लोकान्त-मोक्षस्थित इन जिनेश्वर प्रभु को ज्योति रूप से स्मरण करते हुए आदर पूर्वक पूजा की।)

ब्रह्मा विष्णु स्तथा शक्रो लोकपालस्स देवताः।
जिनार्चन रता एते, मानुषेषु च का कथा ? ।।३४।।

(ब्रह्मा, विष्णु, शुक्र और देवों सह सारे लोकपाल भी इन जिनेश्वर भगवान की पूजा में तल्लीन हैं तो फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या ?)

जानु द्वयं शिरश्चैव, यस्य घष्टं नमस्यतः।
जिनस्य पुरतो देवि! स यादि परमं पदम्।।३५।।

(हे देवी ! जिनेश्वर प्रभु को नमस्कार करते हुए जिसके दोनों जानु गोडे और मस्तक घिस गये हैं वही परम पद-मोक्ष प्राप्त करता है।)

वास्तुशिल्प शास्त्र के शिव पार्वती उवाच में ऋषभदेव का महात्म्य ऋषभदेव की प्रमाणिकता की पुष्टि करता है।

सभी धर्मो का प्रेरणा स्रोत कैलास हैं। यहाँ की तीर्थयात्रा प्रतिवर्ष हजारों यात्री करते हैं। यह क्षेत्र प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का निर्वाण स्थल है साथ ही यह क्षेत्र पुराणों आदि ग्रन्थों में शिव के नाम से भी जुड़ा है । तिब्बती भाषा में शिव का अर्थ मुक्त होता है। इसी लिये भगवान ऋषभदेव को भी कहीं कहीं शिव के नाम से भी अभिहित किया गया है.......

कैलाश पर्वते रम्ये वृषभों यं जिनेश्वर
चकार स्वारतारं यः सर्वज्ञ सर्वगः शिवः

(स्कन्ध पुराण कौमार खण्ड अ० ३७)

केवलज्ञान द्वारा सर्वव्यापी, सर्वज्ञाता परम कल्याण रूप शिव वृषभ ऋषभदेव जिनेश्वर मनोहर कैलाश अष्टापद पर पधारे।

तिब्बती भाषा में लिंग का अर्थ क्षेत्र होता है– "It may be mention that Linga is a Tibetan word of Land" (S. K. Roy - History Indian & Ancient Eygpt. pg. 28). तिब्बती लोग इस पर्वत को पवित्र मानकर अति श्रद्धा के साथ पूजा करते है तथा इसे बुद्ध का निर्वाण क्षेत्र कागरिक पौंच कहते है। यहाँ बुद्ध का अर्थ अर्हत

से है जो बुद्ध अर्थात् ज्ञानी थे। शिव लिंग का अर्थ मुक्त क्षेत्र अर्थात् मोक्ष क्षेत्र होता है। शिव भक्त भी लिंग पूजा करते थे। जो प्राचीन काल में भी प्रचलित था— "In fact Shiva and the worship of Linga and other features of Popular Hinduism were well established in India long before the Aryans came" (K. M. Pannekar 'A survey of Indian History' Pg-4), बाद में तांत्रिकों ने इसका अर्थ अर्हत धर्म के विपरीत बनाकर विकृत कर दिया।

कैलाश का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। शिव और ब्रह्मा ने यहां तपस्या की थी, मरिचि और वशिष्ट आदि ऋषियों ने भी यहाँ तप किया था। चक्रवर्ती सगर के पूर्वज मन्धाता के यहाँ आने का वर्णन मिलता है। गुरुला मन्धाता पर्वत पर उन्होंने तपस्या की थी। ऐसा कहा जाता है कि गुरला मन्धाता पर्वत की श्रृंखला को ऊपर से देखे तो एक बड़े आकार के स्वास्तिक के रूप में दिखाई देता है। "The Bonpo the ancient pre Buddhist Tebetan religion refers to it as a 'Nine Storey' Swastik Mountain" बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत स्वामी इस क्षेत्र में आये थे ऐसा तिब्बती ग्रन्थों में वर्णन है। राक्षस ताल के जिस द्वीप पर उन्होंने तपस्या की थी उसका स्वरूप कुर्म की तरह था। स्वामी तपोवन के अनुसार राम और लक्ष्मण भी यहाँ आये थे—— On the road from Badrinath to Kailas one can see the foot prints of the two horses on which Rama and Laxman were riding when they went to kailas. जैन और जैनेतर दोनों ग्रन्थों में रावण का अष्टापद जाने का विवरण मिलता है। जैन शास्त्र में वर्णित इस घटना के विवरण का कागड़ा जिले के नर्मदेश्वर मन्दिर की एक दीवार पर बने चित्र से भी पुष्टि होती है। इस विषय में मीरा सेठ ने अपनी किताब 'Wall paintings of the Western Himalayas' में लिखा है 'In one of the panel Rawana

in his annoyance being ignore by Siva is crying to shake Kailas.' यहाँ बालि की जगह शिव को बताया गया है। स्वामी तपोवन ने भी राक्षस ताल में रावण ने तप किया था ऐसा उल्लेख किया है। यह कहा जाता है कि दत्तात्रेय मुनि ने यहाँ तपस्या की थी। महाभारत में भी कैलाश मानसरोवर से सम्बन्धित अनेक उल्लेख मिलते है जिनमें व्यासमुनि भीम, अर्जुन और कृष्ण के कई बार मानसरोवर जाने का उल्लेख है। जोशीमठ और बद्रीनाथ के बीच पाण्डुकेश्वर से प्राप्त एक ताम्रलेख में वर्णन है कि एक कत्तचुरी राजा ललितसुर देव और देशतदेव ने इस क्षेत्र को अधिकृत किया था। ह्वेनसांग और इत्सिन आदि यात्रियों ने भारत में इसी क्षेत्र से प्रवेश किया था। जगत गुरु शंकराचार्य के जीवन चरित्र में कैलाश के निकट अपना शरीर छोड़कर योग द्वारा कुछ समय के लिये परकाया में प्रवेश का वर्णन है। कांगरी करछक में वर्णन है कि Geva Gozangba द्वारा कैलास परिक्रमा पथ की खोज सबसे पहले की गई। ऐसा कहा जाता है कि भारत से सप्त ऋषि यहाँ आये थे। आचार्य शांतरक्षित और गुरु पद्मसम्भव नें भी यहां की यात्रा की थी। लेकिन इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। Lochava (Tibetan translator) और Rinchhenzanbo 1958-1058 में यहां आये थे और बारह वर्ष खोचर में रहे थे। उनकी गद्दी आज भी वहां पर है। १०२७ ई. में पण्डित सोमनाथ जिन्होंने "कालचक्र ज्योतिष" का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया था उनके साथ पं. लक्ष्मीकर और धनश्री यहां आये थे। ११वीं शताब्दी में महान तांत्रिक सिद्ध मिलरेपा ने यहां नग्न रह कई वर्ष तपस्या की थी। कैलाश पुराण में उनके चमत्कारों का वर्णन मिलता है। मिलरेपा के गुरु लामाकारपा और उनके गुरु तिलोपा ने कैलास यात्रा की थी। सन् १०४२ में विक्रमशिला विद्यालय के आचार्य दीपांकर ने यहां पर बौद्ध धर्म का प्रचार किया और कई किताबें भी

लिखी। कैलाश मानसरोवर की सदियों से प्रचलित तीर्थयात्रा १९५९ से १९८० तक बन्द रहने के बाद १९८१ में पुनः प्रारम्भ हुई। उससे पूर्व तथा बाद में अनेक महत्वपूर्ण लोग इस क्षेत्र में गये और उन्होंने अपनी यात्रा का विवरण अपने लेखों में दिया। यूरोपीय विद्वानों ने भी यहाँ की यात्रा की और महत्वपूर्ण खोजे भी की परन्तु कैलाश की पवित्रता का पूर्णतयः सम्मान करते हुए।

सन् १८१२ ई० में William Moor Craft इस क्षेत्र में आये थे और मानसरोवर पर अपना शोद्य किया था...... "The first Europeans to explore the holy lakes were William Moorcroft, whose name will ever be remembered in connection with the tragic fate of the Mission to Bokhara in 1825, and Hyder Hearsey, whose wife was a daughter of the Mogul Emperor Akbar II. "

"In 1812 Moorcroft and Hearsey, disguised as ascetics making a pilgrimage, entered Tibet by the Niti Pass in Garhwal, visited Gartok, which had then, as now, only a few houses, traders living in tents during the fair season, explored Rakas and Mansarovar Lakes and saw the source of the Sutlej river."

"It was in 1824 that the first Russian caravan visited bokhara. On their return to the Almora district the two explorers were arrested by the Nepalese soldiers, but subsequently after some trouble were released (vide "Journal Royal Geog. Soc.," xxxvi. 2)." (Western Tibet). सन् १९०१ में Major C. H. D. Ryder and Captain Rawling ने इस क्षेत्र में अपनी खोज जारी रखी। सन् १९०५ में Charles sherring जो

अलमोड़ा के कमिश्नर थे वह और Dr. T. G. Longstaff लिपू लेक घाटी से होकर आये। Dr. Longstaff ने Gurla Mandhata पर चढ़ने की कोशिश की। शिखर पर पहुंचने से पूर्व ही जोर का तूफान आया और उन्हें असफल लौटना पड़ा। सन् १९०७-०८ में Mr. cassel ने यहां भ्रमण किया। सन् १९०७-०८ में स्वीडिश खोजकर्ता Dr. Sven Heden यहाँ दो महीने मानसरोवर में रहे तथा Canvas की नौका से मानसरोवर की यात्रा की। वो पहले योरुपिय थे जिन्होंने मानसरोवर, राक्षस ताल और कैलास के विषय में गहन अनुसंधान किया। इनकी यात्राओं का वर्णन बहुत ही रोमांचक और आकर्षनीय है। उन्होंने ब्रह्मपुत्र, गंगा और सतलज के मूल स्रोत को खोज निकाला था। उन्होंने अपनी खोजों का विस्तृत विवरण अपनी किताबों Trans Himalaya (तीन खण्ड) और Southern Tibet (१२ खण्ड) में दिया है। सन् १९०८ में बम्बई के श्री हंसा स्वामी lipu lekh pass से कैलास गये थे। वहाँ पर १२ दिन रहे तथा बाद में कैलास पर एक मराठी में किताब लिखी जिसका अंग्रेजी अनुवाद उनके एक शिष्य पुरोहित स्वामी ने किया। जिसका नाम Holy mountain रखा। जिसमें उन्होंने लिखा है कि उन्होंने गौरीकुंड में दत्तात्रय के दर्शन किये थे और उनकी कृपा से १५ घण्टो की यात्रा १५ मिनट में पूरी कर ली। सन् १९१२-१३ ई. में मयुर पंखी बाबा ने अनेक बार कैलास की यात्रा की। सन् १९१३ ई. में वो Gengta गुफा में एक वर्ष रहे। सन् १९१४ ई. में उनकी अत्यधिक सर्दी के कारण मृत्यु हो गयी। सन् १९१५ में श्री स्वामी सत्यदेव परिव्राजक कैलाश मानसरोवर गये और उन्होंने इस विषय में पहली हिन्दी किताब लिखी थी। सन् १९२४ में स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज ने कैलाश-मानसरोवर यात्रा की सिर्फ कौपीन पहनकर। सन् १९२२ में रायबहादुर S. R. Kashyap ने कैलास परिक्रमा की और अपने लेख "Some Geographical Ob-

servations In western Tibet" में इसका विवरण दिया। सन् १९२६ में Hugh Rutledge Deputy Commissioner of Almora तथा १९२७ में स्वामी जयेन्द्रपुरी जी मंडलेश्वर ने २५ महात्माओं के साथ इस क्षेत्र की यात्रा की। इनमें से एक पंडित ने "श्री कैलाश मार्ग प्रदीपिका" नामक किताब लिखी थी। सन् १९२९ में केरल निवासी Swami Tapovan ने गंगोत्री होते हुए कैलाश की यात्रा की। उनके विषय में लिखा है— To quote a very recent example during the year 1920 to 1942 Swami Tapowana of Kerala made several journeys to the Himalayan tops. Born in a remote place in Malabar, Swami Tapovana had a natural yearning for the Himalaya. His study of ancient Malayalam literature and Sanskrit books inspired him and made him long for the holy stopes which had inspired him...........Swamiji made several journeys to the Himalayan tops, visiting famous shrines from Kashmir to Nepal, always on foot (that too bare foot), without scientific gadgets or even heavy clothes and often without sufficient food supplies. In this way Swamiji reached a height of at least 4,000 to 5, 000 metres traversing lake Mansarovar and the foot of Mt. Kailasa. Swamiji also performed the Parikrama around the base of Kailasa, which has a perimetre of 55 kms. Swamiji has described Kailasa as 'Krishna-Parvat', dark mountain............Swami Tapovana has left detailed accounts of his journeys into the Himalaya in two Malayalam works 'Himagiri-Vihara' and 'Kailasa-Yatra.' Eternal Himalaya)

सन् १९५१ से १९५६ के वर्षों में नागपुर निवासी वोहरा जाति के बुलाकी दास जो hill forest contractor थे। उस क्षेत्र में गये तथा अष्टापद के अनेक चित्र लिये। उन्होंने लिखा है कि — सूर्य की धूप में यह पहाड़ बर्फ से ढ़का होने पर भी सुनहरा नजर आता है। तेज हवाओं के साथ अजीब घंटिय़ों की सी आवाज सुनायी पड़ती है।

स्वामी प्रणवानन्द जी महाराज कैलास मानसरोवर में लगभग एक वर्ष तक रहे। उन्होंने वहाँ का वर्णन अपनी पुस्तक Exploration of Tibet में विस्तृत रूप से दिया है। उनके अनुसार कैलाश श्रृंखला अलमोड़ा से १९० किलोमीटर है और लासा से १२८० किलोमीटर है। कैलास को तिब्बती लोग कांगरिपोच कहते है। यह मानसरोवर के उत्तर में ६६९३ मीटर ऊंचा है और गुरलमन्धाता पर्वत जो मानसरोवर के दक्षिण में है ७२२२ किलोमीटर ऊंचा है। कैलास की परिक्रमा ५५ किलोमीटर की है। It's Gorgeous silvery Summit resplendent with the lustre of spiritual aura, pierces into a heavenly height of 22028 feet above the level of the even bosom of the see. The parikrama or Circumambulation of the Kailash Parvat is about 32 miles. यहां पांच गुफाएं है। जो आज बौद्ध लामा लोगों के अधिकार में है जिनके नाम इस प्रकार है— The five monasteries of Kailas are (1) Nyanri or Chhuku gompa (W.), (2) Diraphuk gompa(N.), (3) Zunthulphuk gompa (E.), (4) Gengta gompa (S.), and (5) Silung gompa* (S.). There are four *shapjes* or footprints of the Buddha, four *chaktaks* or chains, and four *chhak-chhal-gangs,* round Kailas.

Nyanri Gompa से कैलास का दृश्य कैसा दिखता है इस विषय में Sven Heden ने अपनी किताब Trans Himalayan में लिखा है "Two monks, two old women, and a boy received

us kindly, and said it was the first time they had seen a European in Nyandi. The monastery, as well as the three others on Kailas, is under Tarchen-labrang, which is situated on the southern foot of the mountain, where the pilgrims begin and end their circuit. Curiously enough, these monasteries belong to Tongsa Penlop, the Raja of Bhotan." "The view from the Nayandi roof is indescribably beautiful. The icy summit of Kang-rinpoche rises amid fantastic fissured precipitous rocks, and in the foreground are the picturesque superstructure of the monastery and its streamers (IIlust. 265)."

Diraphuk gompha के विषय में Sven Heden ने लिखा है......... "At length we see the monastery Diri-pu in front of us, standing on the slope on the right side of the valley. A huge block of granite beside the path up to it bears the usual sacred characters, and there also are long manis, streamers, and cairns."

" Here also there is a fine view of Kailas, raising its summit due south."

सन् १८९८ ई. में लिखित In The Forbidden Land (Vol -1) में A. Henry Savage landor ने १६६०० ft. पर Lama Chokden Pass से कैलास के सौन्दर्य का वर्णन किया है........... "I happened to witness a very beautiful sight. To the north the clouds had dispersed, and the snow-capped sacred Kelas Mount stood majestic before us. In appearance no unlike the graceful roof of a temple, Kelas towers over the long white-capped range,

contrasting in beautiful blending of tints with the warm sienna colour of the lower elevations. Kelas is some two thousand feet higher than the other peaks of the Gangir chain, with strongly defined ledges and terraces marking its stratifications, and covered with horizontal layers of snow standing out in brilliant colour against the dark ice worn rock. (In the forbidden land pg. 184)

कैलास परिक्रमा पथ पर १८०० फीट ऊपर Dolma-La, a pass के विषय में The Throne Of The God ¨Éå Arnorld Heim and August Gansser ने लिखा है.......... "Now we are on pilgrimage to Dolma-La, a pass over 18,000 feet high, the highest in the circuit of Kailas. A forest of cairns indicates the holiness of the place. Great piles of human hair are encircled by little walls. A rock is covered with teeth that have been extracted--- religious sacrifices made by fanatical pilgrims. Huge and savage granite crags border the pass, which is covered with new-fallen snow. My companions kneel at the tomb of a saint. Hard by is a rock showing what are said to be the holy man's footprints." "Beside Dolma-La is an enormous crag surmounted by a flag staff..........." (pg. 102).

आगे कैलास के विषय में उन्होंने लिखा है........... "All that is beautiful is sacred"-------the fundamental idea of Asiatic religions is embodied in one of the most magnificent temples I have ever seen, a sunlight temple of rock and ice. Its remarkable structure, and the peculiar harmony of its shape,

justify my speaking of Kailas as the most sacred mountain in the world. Here is a meeting-place of the greatest religions of the East, and the difficult journey round the temple of the gods purifies the soul from earthly sins. The remarkable position of this mountain that towers out of the Transhimalayan plateau already indicates that it must present extremely interesting geological problems for solution. 'this mountain is just as sacred to me as it is to you, for I too am a pilgrim, just as those two lamas who passed a moment ago are pilgrims. Like you, like them, I am in search of the beautiful, the sacred in this wonderful mountain.'... "The very stones of this region are sacred, and to collect specimens is·sacrilege." (pg. 97-98).

इस पूरे क्षेत्र के विषय में वर्णन करते हुए Western Tibet में Charles A. Sherring ने लिखा है......... "The view as one surveys this holy place, venerated alike by Buddhists and Hindus, is one of the most beautiful throughout the whole of this part of the country. The Mansarowar Lake, forty=five miles in circumference, on the right, and Rakas Tal, of equal size and more varied contour, on the left, make with their lovely dark blue a magnificent foreground to the range of the Kailas mountains at the back, While the holy Kailas Peak, Tise of the Tibetans, the Heaven of Hindu and Buddhists, fills the centre of the picture, full of majesty, a king of mountains, dominating the entire chain by 2000 ft". (pg. 280)

कैलाश के पूर्व और उत्तर दिशा का वर्णन Trans Himalaya में इस प्रकार दिया गया है........" here we have a splendid view of the short truncated glacier which, fed from a sharply defined trough-shaped firn basin, lies on the north side of Kailas. Its terminal, lateral, and medial moraines are small but distinct. Eastwards from Kailas runs off an exceedingly sharp, pointed, and jagged ridge, covered on the north side with snow, and belts of pebbles in the snow give all this side a furrowed appearance." (Sven Heden)

"It is believed that one *parikrama* of the Kailas peak washes off the sin of one life, 10 circuits wash off the sin of one *kalpa,* and 108 *parikramas* secure *Nirvana* in this very life." अर्थात् यह माना जाता है कि कैलास की एक परिक्रमा एक जीवन के सारे पापों क्षय कर देती है। १० परिक्रमा एक कल्प के पापों का क्षय कर देती है। और १०८ परिक्रमा करने से इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त होता है।

इस क्षेत्र में हर बारह वर्ष में एक मेला लगता है.......... There is a big flag-staff called *tarbochhe* at Sershung on the western side of Kailas. A big fair is held there on *Vaisakha Sukla Chaturdasi* and *Purnima* (full - moon day in the month of May), when the old flag-staff is dug out and re-hoisted with new flags." "Every horse year, and accordingly every twelfth year, crowds of pilgrims come to Kailas." (Exploration In Tibet)

पुराणों में मानसरोवर की उत्पत्ति के विषय में एक किंवदन्ती है— एक समय सनक, सनंदन, सनत् कुमार, सनत् सुजात आदि

ऋषि कैलास शिखर पर शिव को प्रसन्न करने के लिये तपस्या कर रहे थे, इसी अवधि में बारह वर्ष तक अनावृष्टि होने के कारण आसपास की सब नदियां सूख गई। स्नान आदि के लिए ऋषियों को बहुत दूर मंदाकिनी तक जाना पड़ता था, इसलिये उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा ने अपने मानसिक संकल्प से कैलास के पास एक सरोवर का निर्माण कर स्वयं हंस-रूप हो उसमें प्रवेश किया। ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि होने के कारण इसका नाम मानस-सरोवर पड़ा। अब इसे मानसरोवर या केवल मानस भी कहते हैं। इसके जल के ऊपर सरोवर के मध्य भाग में एक कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ।

"The oval lake, somewhat narrower in the south than the north, and with a diameter of about $15^1/_2$ miles, lies like an enormous turquoise embedded between two of the finest and most famous mountain giants of the world, the Kailas in the north and Gurla Mandatta in the south, and between huge ranges, above which the two mountains uplift their crowns of bright white eternal snow."............ "Wonderful, attractive, enchanting lake! Theme of story and legend, playground of storms and changes of colour, apple of the eye of gods and men, goal of weary, yearning, pilgrims, holiest of the holiest of all the lakes of the world, art thou, Tso-mavang, lake of all lakes. Navel of old Asia, where four of the most famous rivers of the world, the Brahmaputra, the Indus, the Sutlej, and the Ganges, rise among gigantic peaks, surrounded by a world of mountains, among which is Kailas, the most famous in the world; for it is sacred in the eyes of hundreds of millions of Hindus, and is the centre of a wreath

of monasteries where every morning blasts of conches sound out from the roofs over the lake. Axle and hub of the wheel, which is an image of life, and round which the pilgrims wander along the way of salvation towards the land of perfection." (Trans Himalaya)

पवित्र मानसरोवर को Tso Mavang — कहते है। इसको संसार का सबसे प्राचीन सरोवर माना गया है। इसके उत्तर में कैलास, दक्षिण में गुरल मन्धाता और पश्चिम में राक्षस ताल पूर्व में पहाड़ है। इसकी ऊंचाई १४९५० फिट और २०० स्क्वायर एरिया में यह फैला हुआ है। इसके किनारों पर आठ गुफाएं है जिनमें बौद्ध लामा लोग रहते है। स्वामी प्रणवानन्दजी ने लिखा है कि इस लेक के विषय में पूर्ण रूप से जानने के लिये वहां एक वर्ष तक रहना जरूरी है। क्योंकि हर ऋतु में उसका अपना अलग-अलग सौन्दर्य होता है। जिसका वर्णन कोई दैविक चित्रकार ही कर सकता है। वहां उदित होते हुए सूर्य और अस्त होते हुए सूर्य के समय जो नैसर्गिक सौन्दर्य देखने में आता है वह अवर्णनीय है। लेक की परिक्रमा ६४ मील की है। और गहराई ३०० फिट की है। तिब्बती लोग इसकी परिक्रमा शीत ऋतु में करते है जब उसकी सतह में बर्फ जम जाती है। कैलास मानसरोवर के विषय में पुराणों महाभारत और रामायण में अनेक उल्लेख मिलते है। स्कन्ध पुराण के मानस खण्ड में इसे ब्रह्मा के मानस से उत्पन्न इसे बताया गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार महाराजा मन्धाता ने मानसरोवर के किनारे तपस्या की थी। मानसरोवर को आनेवातप्ता (पृथ्वी का वास्तविक स्वर्ग) बताया गया है।

Since the advent of Aryan civilization into India, Tibet and especially the Kailas-Manasarovar region have been glorified in the Hindu mythology as part of the Himalayas.

The *Ramayana* and the *Manasakhanda* of *Skanda Purana* in particular sing the glory of Manasarovar. She is the creation of the *manas* (mind) of Brahma, the first of the Trinity of the Hindu mythology; and according to some the Maharaja Mandhata found out the Manasarovar. Mandhata is said to have done penance of the shores of Manasarovar at the foot of the mountains which are now known after his name. In some Pali and Sanskrit Buddhist works, Manasarovar is described as *Anavatapta*---take without heat and trouble. In the centre is a tree which bears fruits that are 'omnipotent' in healing all human ailments, physical as well as mental, and as such sought after by gods and men alike. This *Anavatapta* is described as the only true paradise on earth."

"there are seven rows of trees round the Holy Manasarovar, and there is a big mansion in it, in which resides the king of *Nags* (serpent-gods) and the surface of the Lake is are-like with a huge tree in the middle. The fruits of the tree fall into the Lake with the sound *jam;* so the surrounding region of the earth is named 'Jambu-ling', the Jambudwipa of Hindu *Puranas.* Some of the fruits that fall into the Lake are eaten by the *Nags* and the rest become gold and sink down to the bottom." (Exploration In Tibet)

"The eight monasteries round Manasarovar are: (1) Gossul gompa (west), (2) Chiu gompa (N.W.), (3) Cherkip gompa (N), (4) Langpona gompa (N.), (5) Ponri gompa (N.), (6) Seralung gompa (E.), (7) Yerngo gompa (S.), and (8)

Thugolho gompa or Thokar (S.). There are four *lings* or *chhortens* (memorials of some great lamas) and four chhak-chhal-gangs (wherefrom *sashtanga-danda-pranamam* or prostration salute is made) round Manasarovar. The four *chhortens* are at Chiu gompa, Langpona gompa, Seralung gompa, and Thugolho gompa. The four *chhak-chhal-gangs* are at Momo donkhang (S.W.), Sera la (W.), Havasenimadang (E.), and Riljung (S.E.)."

"The monasteries round these lakes are under the government of different ecclesiastical chiefs; for instance, Gozul is under the Taklakot Shivling, Jaikep (Jenkhab of the maps) under the Ruler of Bhutan, Jiu is a Dokpa Gompa, and the head lama comes from Lhasa, & c. The word Gompa literally means a "soli ry place" and hence came to mean a monastery. (Western Tibet).

"The scripture further says, that the four great rivers called (1) the langchen Khambab or the Elephant-mouthed river (Sutlej) on the west; (2) the Singi Khambab or the Lion-mouthed river (Indus) on the north, (3) the Tamchok Khambab or the Horsemouthed river (Brahmaputra) on the east, and (4) the Mapcha Khambab or Peacock-mouthed river (Karnali) on the south, have their sources in Tso Mapham--the Lake unconquerable (Manasarovar); that the water of the Sutlej is cool, the water of the Indus hot, the water of the Brahmaputra cold, and of the Karnali warm; and that there are sands of gold in the Sutlej, sands of dia-

monds in the Indus, sands of emeralds in the Brahmaputra, and sands of gold in the Sutlej, sands of diamonds in the Indus, sands of emeralds in the Brahmaputra, and sands of silver in the Karnali. It is also said that these four rivers circle seven times round Kailas and Manasarovar and then take their courses towards west, north, east, and south respectively." Swen Heden मानसरोवर के मध्य में नौका द्वारा पहुँचकर वहाँ से कैलाश का नैसर्गिक सौन्दर्य देखकर हतप्रभ रह गये........."Thousands and thousands of pilgrims have wandered round the lake in the course of centuries, and have seen the dawn and sunset, but have never witnessed the display which we gazed upon from the middle of the holy lake on this memorable night."

मानसरोवर के पश्चिम में राक्षस ताल या रावण ह्वद है। कहते है यहां रावण ने शिव को प्रसन्न करने के लिये यहां तप किया था। राक्षस ताल में दो द्वीप है। लचाटो और टोप्सर्मा। लचाटो का स्वरूप कुर्म की तरह है। जो २०वें तीर्थंकर मुनि सुब्रत स्वामी का लांछन है। इसका घेरा एक माइल का है। पहाड़ी के ऊपर मनीश्लैब है जिसमें लिखा है ॐ मनी पद्म होम। दूसरा द्वीप तोप्सर्मा बड़ा है इसके पूर्व में एक पक्का घर का खण्डहर है। कहां जाता है कि पूर्व में कोई लामा यहां रहता था। डॉ. श्वेन हेडेन ने अपनी खोजों में राक्षस ताल में तीन द्वीप बताये है। जबकि स्वामी जी ने दो का ही उल्लेख किया है। शीत काल में मानसरोवर में दो से चार इंच तक बर्फ जम जाती है उस समय के हुए अपने अनुभवों के उल्लेख स्वामी जी अपनी किताब Exploration in Tebet में किया है।

"At a distance of $1^1/_2$ to 6 miles to the west of Manasarovar is the Rakshas Tal, also known as Ravan Hrad, Rakshas Sarovar, or Ravan Sarovar where Ravana of Lanka fame was said to have done penance to propitiate Lord Shiva, the third of the Hindu Trinity and the dweller of Kailas."

"There are two islands in Rakshas Tal, one Lachato and the other Topserma (or Dopserma)."

"Lachato is a rocky and hilly island having the appearance of a tortoise with the neck stretched out towards a peninsula on the southern shore."

"On the top of the hill is a *laptche,* a heap of stones, with *mani*-slabs."

राक्षसताल के विषय में The throne of the God में वर्णन है कि......... "Towards evening we reached the shores of Lake Raksas, which this time was worthy of its name of "haunted lake". A storm-wind lashed the water. The foam-crowned waves broke with a roar upon the sandy beach. I could not but be reminded of the stormy boat-journey of Sven Hedin, the first European to explore this lake. Beneath over hanging rocks we found a camping site well sheltered from the wind, I think the best camp of this journey. In front of us was the raging lake, and northward the partially obscured Transhimalayan chain, over topped by Kailas, round which the storms were raging. To the S.E. we could see the slopes of Gurla Mandhata, with their shining glaciers."

To the S.E. the distant Gurla Mandhata is resplendent in yellows and wine-reds; Raksas Valley is violet and green; the clouds aloft are golden; and in the west the mountains covered with new-fallen snow have a golden-red tint. Gurla turns dark violet, the clouds red-violet, a moment snatches the glory from the grey, the sun has vanished.

Raksas, and Manasarowar which lies beyond it, are the two holiest lakes in Tibet. They form the great upland basin out of which the Brahmaputra flows eastwards, and the sutluj, one of the main tributaries of the Indus, north -- westwards (Pg 87 to 109)

Sven Heden ने मानसरोवर के विषय में लिखा है........ "For Manasarowar is the holiest and most famous of all the lakes of the world, the goal of the pilgrimage of innumerable pious Hindus, a lake celebrated in the most ancient religious hymns and songs, and in its clear waters the ashes of Hindus find a grave as desirable and honoured as in the turbid waters of the Ganges." मानसरोवर के मध्य में पहुँचकर वहाँ से गुरल मन्धाता पर्वत के सौंदर्य का उल्लेख इस प्रकार किया है..... "Only an inspired pencil and magic colours could depict the scene that met my eyes when the whole country lay in shadow, and only the highest peaks of Gurla Mandatta caught the first gleam of the rising sun. In the growing light of dawn the mountain, with its snow fields and glaciers, had shown silvery white and cold; but now ! In a moment the extreme points of the summit began to glow with purple like liquid gold."

जिस तरह नवकार मंत्र जैनधर्म में, गायंत्री मंत्र हिन्दू धर्म में प्रमुख माना जाता है। उसी तरह तिब्बत में ओम मणि पद्म हूँ यह मंत्र अत्यन्त्र पवित्र और प्रमुख माना जाता है। इसके विषय में स्वामी प्रणवानन्द जी ने लिखा है........ "*Om-ma-ni-pad-me-hum* is the most popular and sacred mantra of the Tibetans, which is ever on the lips of all men, women, children, monks, and house-holders. They always repeat this mantra for a greater number of times than a most orthodox Brahmin does his Gayatri Japa in India. The meaning of this formula is "The Jewel of Om in the Heart-Lotus." The word hri is also added to it very often. As in Tantric schools, Tibetans assign certain colours to each letter of the mantra and they believe that the utterance of this six-syllabled formula extinguishes re-birth in the six worlds and secures Nirvana. The colours of the letters are white, blue, yellow, green, red, and black respectively. *Hri* is also said to be white. The *mani-mantra* is said to be an invocation of the Bodhisattva Avalokiteswara."

Abode of snow में Andrew Wilson ने पूरे एक अध्याय में इस मंत्र के विषय में लिखा है जिसका कुछ अंश यहां दे रहे है।

"The stones are beautifully inscribed for the most part with the universal Lama prayer, "Om mani padme haun;" but Herr Jaeschke informs me that sometimes whole pages of the Tibetan Scriptures are to be found upon them, and they have, more rarely, well-executed basreliefs of Budha, of various saints, and of sacred Budhistic symbols. These

stones are usually prepared and deposited for some special reason, such as for safety on a journey, for a good harvest, for the birth of a son; and the prodigious number of them in so thinly peopled a country indicated an extraordinary waste of human energy. "............"These primitive six syllables which the Lamas repeat are, of all the prayers of earth, the prayer which is most frequently repeated, written, printed, and conveniently offered up by mechanical means. They constitue the only prayer which the common Mongols and Tibetans know; they are the first words which the stammering child learns, and are the last sighs of the dying. The traveller murmurs them upon his journey; the herds man by his flock; the wife in her daily work; the monk in all stages of contemplation,---that is to say, of nihilism; and they are the cries of conflict and triumph." ...."They are, according to the meaning of the believer, the essence of all religion, of all wisdom and revelation; They are the way of salvation, and the entrance to holiness. ' These six syllables unite the joys of all Budhas in one point, and are the root of all doctrine." ...."It is rather disappointing to find that the closest English version of them which can be given is "O God ! the jewel (or gem) in the lotus ! A men." I have gone carefully into this subject, and little more can be got out of it. Substantially the prayer, or rather the exclamation, is not of Tibetan, but of Sanskrit origin. Koeppen translates is simply as-- "O ! das Kleinod in Lotus ! Amen." But that is

quite insufficient, because the great force of the formula lies in "Om," the sacred syllable of the Hindus, which ought never to be pronounced, and which denoted the absolute, the supreme Divinity."

Sven Heden 'Trans Himalayan' में इस विषय में कहते है..........."Concerning this Waddell makes, among others, the following remarks : "Om-ma-ni pad-me Hum, which literally means "*Om !* The Jewel in the lotus !" *Hum !* ----is addressed to the Bodhisat Padmápani, who is represented like Buddha as seated or standing within a lotus-flower. He is the patron-god of Tibet and the controller of metempsychosis. And no wonder this formula is so popular and constantly repeated by both Lamas and laity, for its mere utterance is believed to stop the cycle of re-births and to convey the reciter directly to paradise. Thus it is stated in the Mani-kah-bum with extravagant rhapsody that this formula is the essence of all happiness, prosperity, and knowledge, and the great means of deliverance, for the *Om* closed re-birth amongst the gods, ma among the Titans, ni as a man, pad as a beast, me as a Tantalus, and Hum as an inhabitant of hell. And in keeping with this view each of these six syllables is given the distinctive colour of these six states of re-birth, namely: Om, the godly white; ma, the Titanic blue; ni, the human yellow; pad, the animal green; me, the Tantalic red; and Hum, the hellish black" (*The Buddhism of Tibet, 148-9).*

इन विद्वानों ने इस मंत्र की व्याख्या करके इसका जो अर्थ किया हैं उससे वे स्वयं भी संतुष्ट नहीं हुए हैं। ओम में पंच परमेष्ठी तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश निहित हैं। मणि का अर्थ होता है सर्वश्रेष्ठ, पद्म का अर्थ चरण कमल, हूँ का अर्थ है प्रत्यास्मरण अतएव जिन सर्वश्रेष्ठ पुरुषों के पवित्र चरण यहाँ पर पड़े उनका हम प्रत्यास्मरण करते हैं। कैलास पर्वत तथा उसके आस-पास का क्षेत्र सिद्ध भूमि कहलाता है। यहाँ से अनेक दिव्य आत्माओं ने मुक्ति प्राप्त की अतः उन सभी सिद्ध आत्माओं जिनके चरण कमल इस भूमि पर पड़े उन सभी का हम प्रत्यास्मरण करते हैं।

चतुर्विध संघ की स्थापना करके ऋषभदेव इस अवसर्पिणी काल के आदि तीर्थंकर बने । समवसरण में उनकी देशना होने के उपरान्त अखण्ड तूष रहित उज्जवल शाल से बनाया हुआ चार प्रस्थ जितना बलि (अर्थात्-बिना टूटे साफ सफेद चावल) थाली में रख करके समवसरण के पूर्व द्वार से अन्दर लाया गया और प्रभु की प्रदक्षिणा कर उछाल दिया गया । उसके आधे भाग को देवताओं ने ग्रहण कर लिया जो पृथ्वी पर गिरा उसका आधा भरत ने और आधा भाग परिवार जनों ने बांट लिया। उन बलि चावलों का ऐसा प्रभाव माना जाता है कि उसके प्रयोग से पुराने रोग नष्ट हो जाते है और छः महीने तक नये रोग नहीं होते। आज भी कैलास की परिक्रमा करते तीर्थयात्री वहाँ चावल अर्पण करते है जिसका उल्लेख 'Throne Of The God' में लेखक ने किया है...... "There are endless chains of red, brown, and yellow mountains, incredibly clear. On the far horizon we discern a new mountain range, pastel blue in the distance, with yellow glaciers. This is Transhimalaya. Out of the vast extent of these new peaks

there thrusts up a white cone, a mountain of strange shape, Kailas, the holy of holies of the Asiatic religion. My companions are motionless, the snow reaching to their hips, while they say their prayers. Each of us offers up to Kailas a handful of rice, scattered down the wind which blows towards the mountain." (The Throne Of The Gods).

बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्राचीन सराक जाति के लोगों में भी बीस तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि पारसनाथ (शिखर जी) की दिशा में धान (चावल) अर्पण करने की परम्परा आज भी देखने को मिलते है। जो अष्टापद पर चावल चढ़ाने, उछालने की प्राचीन परम्परा का प्रतीक है। सराकों के गोत्र पिता आदिनाथ या ऋषभनाथ है। मन्दिरों में चावल चढ़ाने की प्रथा भी इसी प्राचीन परम्परा से चली आ रही है। चावल की सिद्ध शिला जिसका आकार अर्द्ध चन्द्राकार बनाकर उसपर मुक्त जीव का बिन्दू आकार बनाया जाता है। सिद्ध शिला के प्रतीक चन्द्र बिन्दु के नीचे सम्यक दर्शन, ज्ञान और चारित्र का प्रतीक तीन बिन्दु बनाये जाते है। उसके पश्चात् स्वास्तिक।

Sven Heden ने कैलाश के विषय में कहा है— The holy ice mountain or the ice jewel is one of my most memorable recollections of Tebet, and I quite understand how the Tebetan can regard as a divine sancturary this wonderful montain which so striking a resemblance to a chhorten, the monument which is erected in memory of a deceased saint within or without the temples. (pg. 96) ऋषभदेव स्वामी के निर्वाण स्थल पर स्तूप निर्माण की जैन शास्त्रों में दिये गये उल्लेखों की पुष्टि Sven Heden के इस वर्णन से होती है जो उन्होंने कैलाश परिक्रमा करते

समय डिरिपू गुफा से आगे चलने पर किया है— "On our left, northwards the mountain consist of vertical fissured granite in wild pyramidal form. Kailash is protected on the north by immense masses of granite" (Pg. 195) कैलाश तथा उसके आस-पास प्रचुरता से मारबल पत्थर की बनी प्राचीरें आदि वहाँ प्राचीन काल में चैत्यों और स्तूप निर्मित होने की पुष्टि करते हैं। श्री भरत हंसराज शाह ने सन् १९५३-१९९६ और सन् १९९८ में कैलाश की तीन बार यात्रा की। यात्रा के दौरान उन्होंने अनेक चित्र लिये जिनसे यह स्पष्ट होता है कि वहाँ कभी मानव निर्मित भवन थे। चित्रों में एक Sphinex भी दिखाई देता है जो शायद मिस्र में बने पिरामिडों का आदि स्रोत रहा होगा। श्री भरत हंसराज शाहा ने लिखा है....... "During my last two *yatras,* going away from stipulated and regulated route, I have tried to find any possibility. The particular place, I have visited and photographs-slides I have taken, shows excellent results inviting more study in that direction. There is a cathedral like chiselled mountain in front of South face of *Mount Kailas.* An image of sitting lion can be seen on its top. (" sinhnishadhya" prasad). Vertical sculptures are visible on its middle part. A 'sitar' like musical instrument is also visible with one of the sculptures. The tops of few mountains near this mountain are very identical. Their tops are rectangular in shape in front. The mountains them selves are also identical and are of the shape of *Gopurams.* There is a *Gokh (Zarookha)* clearly visible in one of the mountain facing *Nyari Gompa* across the river. In the same range

there is a sphinx like huge image in a mountain. Few cubicle shaped huge stones are lying in the area. Gear teeth shape marble stones are also seen in a pillar like shape in one of the mountains. Bevelled marble stone border is also visible on one of the hills. *Chabutara* shaped ruin is also seen at a place. All this shows that in past, a large scale human work is done at this place. Only in Jain Indology it is mentioned that huge temples, *chaityas, stupas* were erected in *Ashtapad* vicinity........... (Astapad A Possibility)

बेबीलोन के प्राचीन मन्दिरों जिनको जिगुरात कहते थे उनकी निर्माण शैली भी अष्टापद कैलाश के आधार पर ही बनी है। ' The first temple or historical monument, the Ziggurat, found in region between the river Euphrates and Tigris, Carried the same message of ascent. It was built by human hands, probably in the form of a stepped receding pyramid, with a Chamber on the top reached by a flight of steps. "This architectonic model has been used much later in the Aztec temple of the Sun in South East Asia. The archetype of all these symbolic monuments is the peak of Ashtapad it self a receding pyramid". (Ascent To The Divine. The Himalaya and Monasarover In Scripture Art And Thought.) अष्टापद और जिगुरात की तुलना करते हुए U.P. Shah ने 'Studies In Jaina Art' में लिखा है— "The Jain tradition speak of the first Stupa and Shrine, erected by Bharat, on the mountain on which Rsabhanatha oblained the Nirvana. The shrine and

the stupas erected, Bharat made eight terraces (asta-Pada) between the foot and the top of the mountain hence the astapada given to the first Jaina Shrine being an eight - terraced mountain, an eight terraced Ziggurat, or an eight terraced stupa."

The Ziggurat was also the mount of the Dead. Henry Frank Fort, ने अपने ग्रन्थ The Birth Of Civilisation में लिखा है ...... In The Near East. In Mesopotania, the mountain is the place where........ The myth express this by saying the God dies or that he is kept Captive in the mountain. वर्मा में भी इसी तरह की stepped monastries देखने को मिलती है। जिसके विषय में 'A History Of Indian And Eastern Architecture' में James fergusson ने लिखा है— "It may be asked, How it is possible that a Balylonian form should reach Burma without leaving traces of its passage through India? It is hardly a sufficient answer to say it must have come vid Tebet and central Asia," (pg. 365)

John snelling ने अपनी किताब 'The Sacred Mountain' में कैलाश पर्वत की तुलना एक विशाल मन्दिर से की है। अतः चाहे वह मिस्त्र के पिरामिड हो, बेबीलोन के जिगुरात हो या वर्मा के पगोडा सबकी ढाँचा शैली में एक समानता देखने को मिलती है जो यह स्पष्ट करती है कि इन सबका प्राचीन मूल आधार अष्टापद पर निर्मित स्तूप एवं मन्दिर रहे हैं।

इस सब तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन कर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कैलाश की अपेक्षा अष्टापद का दायरा

विशाल है जिसमें पूरी कैलाश श्रृंखला समाहित है। आदि तीर्थंकर की पुण्य भूमि होने के कारण इसकी पवित्रता एवं पूज्यता प्राचीन काल से परम्परा के रूप में अक्षुण्य रूप से चली आ रही है। साहित्य में उपलब्ध वर्णन के अनुसार अनेक महान आत्माओं ने इस तीर्थ की समय-समय पर यात्रा की। दुर्भाग्यवश भौगोलिक एवं राजनैतिक कारणों से जब इस सिद्ध क्षेत्र में आवागमन अवरुद्ध हो गया तो इसकी स्मृति को जीवन्त बनाये रखने के लिये अपने-अपने पहुँच के क्षेत्र में अष्टापद जिनालय बनाये गये और उनके दर्शन पूजा से अष्टापद को चिरकाल से धरोहर के रूप में अपनी स्मृति में संजोकर रखा। सभी बड़े-बड़े तीर्थ स्थानों और मन्दिरों में अष्टापद जिनालय बने हुए है। कलकत्ता के बड़ाबाजार मंदिर में अष्टापद बना हुआ है। फलौदी के मन्दिर में तथा बिहार में भागलपुर और पटना के बीच में १७वीं शताब्दी में भगवन्त दास श्रीमाल द्वारा स्थापित तीर्थ में अष्टापद बना हुआ है। श्रेष्ठी वस्तुपाल द्वारा गिरनार पर्वत के शिखर पर अष्टापद सम्मेत शिखर मण्डप एवं मरुदेवी प्रसाद निर्मित कराये गये। प्रबन्ध चिन्तामणि एवं वस्तुपाल चरित्र के अनुसार प्रभास पाटन में वस्तुपाल द्वारा अष्टापद प्रसाद का निर्माण कराया था। तारंगा तीर्थ में अष्टापद निर्मित किया गया है। शत्रुञ्जय तीर्थ में आदिनाथ जिनालय के बाईं तरफ सत्यपुरियावतार मन्दिर के पीछे अष्टापद जिनालय बना हुआ है। जैसलमेर के विश्व विख्यात जिनालयों में भी अष्टापद प्रसाद है जिसके ऊपर शांतिनाथ जिनालय है। अष्टापद प्रसाद के मूल गंभारे में चारो ओर ७ - ५ - ७ - ५ - चौबीस जिनेश्वरों की प्रतिमाएं सपरिकर हैं। हस्तिनापुर जहाँ भगवान् ऋषभदेव स्वामी का प्रथम पारणा हुआ था भव्य अष्टापद जिनालय का निर्माण कराया गया है। इस प्रकार अनेकों तीर्थों और मन्दिरों में अष्टापद

जिनालय निर्मित किये गये है। ये परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। इसी श्रृंखला में अमेरिका के न्यूयार्क शहर में डॉ. रजनीकान्त शाह द्वारा जैन मन्दिर निर्मित कराया गया जिसमें अष्टापद का निर्माण कराया जा रहा है। अष्टापद के ऊपर उपलब्ध साहित्य भी उन्होंने प्रकाशित किया है। इसी सन्दर्भ में जनवरी २००५ में अष्टापद पर अहमदाबाद में विद्वानों की एक संगोष्ठी भी कराई गयी।

इस प्रकार जैन साहित्य में आचारांग निर्युक्ति से लेकर वर्तमान युग में श्री भरत हंसराज शाह के लेखों और चित्रों में हमें अष्टापद पर मंदिरों और स्तूपों के निर्माण का विस्तृत और सुनियोजित वर्णन मिलता है। जो परम्परा के रूप में आज भी जैन तीर्थों और मन्दिरों में जीवन्त है। जैन धर्म के प्राचीन इतिहास की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में अष्टापद की खोज और उसकी प्रामाणिकता साहित्यिक उल्लेखों से और परम्पराओं से स्थापित हो जाती है। यह एक महत्वपूर्ण विषय है जिससे विश्व इतिहास को केवल एक नया आयाम ही नहीं मिलेगा बल्कि मानव सभ्यता और संस्कृति के आदि स्रोत का पता चल सकेगा। यह हमारी अस्मिता की पहचान है और भारतीय सभ्यता और संस्कृति की प्राचीनता का अकाट्य प्रमाण भी।

NAHAR
5/1 Acharya Jagadish Chandra Bose Road,
Kolkata - 700 020
Phone: 2283 3515, Resi: 2246 7757

BOYD SMITHS PVT. LTD.
8, Netaji Subhas Road
B-3/5 Gillander House, Kolkata - 700 001
Ph: (O) 2220-8105/2139,(Resi) 2329-0629/0319

KUMAR CHANDRA SINGH DUDHORIA
Azimganj House
7, Camac Street, Kolkata - 700 017
Ph: 2282-5234/0329

M/S. METROPOLITAN BOOK COMPANY
93, Park Street, Kolkata - 700 016
Ph: 2226-2418, (Resi) 2475-2730, 2476-8730

SURANA MOTORS PVT. LTD.
84 Parijat, 8th Floor, 24A, Shakespeare Sarani
Kolkata - 700 071, Ph: 2247-7450, 2283-4662

SUDIP KUMAR SINGH DUDHORIA
Indian Silk House Agencies
129, Rasbehari Avenue, Kolkata- 700 029, Ph: 2464-1186,

ASHOK KUMAR RAIDANI
M/s. Ashok Trading Corporation
Dealing in All types of Blanket and General Order Supplier
6, Temple Street, Kolkata - 700 072
Ph: 2237-4132, 2236-2072

IN THE MEMORY OF SOHANRAJ SINGHVI
VINAYMATI SINGHVI
93/4 Karaya Road, Kolkata - 700 019
Ph: (O) 2220 8967, (Resi) 2247 1750

GLOBE TRAVELS
Contact for better & Friendlier Service
11, Ho Chi Minh Sarani, Kolkata - 700 071
Ph: 2282-8181

APRAJITA
Air Conditioned Market
Kolkata - 700 071
Phone : (O) 30530222, (Resi) 24543534

DR. K.B. SINGH (M.B.B.S.)
67, S.N. Pandit Road, Kolkata - 700 025
Ph: 2455-2081, 2454-7127, Chember- 2268-8670/4207

LALCHAND DHARAMCHAND
Govt. Recognised Export House
12, India Exchange Place, Kolkata-700 001
Ph: (B) 2220-2074/8958 (D) 2220-0983/3187
Cable: SWADHARMI, Fax: (033) 2220 9755
Resi: 2464-3235/1541, Fax: (033) 2464 0547

TARUN TEXTILES (P) LTD.
203/1, Mahatma Gandhi Road, Kolkata - 700 007
Ph: 2268-8677, 2269-6097

AJAY DAGA, AJAY TRADERS
28, B.T. Road, Kolkata - 700 002
Ph: (O) 2268-9356/0950 (Fact). 2557-1697/7059

COMPUTER EXCHANGE
Park Centre' 24 Park Street
Kolkata - 700 016, Ph: 2229-5047/9110

SUNDERLAL DUGAR
R. D. B. Industries Ltd.
Regd: Off: Bikaner Building
8/1 Lal Bazar Street, Kolkata - 700 001
Ph: 2248-5146/6941/3350, Mobile: 9830032021

AMRITLAL & CO.
113B, Monohardas Katra
Ist floor, Kolkata - 700 007
Phone: (O) 2282-4649 (R) 2454-3534

ARBEITS INDIA
8/1, Middleton Road, 8th Floor, Room No.4
Kolkata - 700 071, Ph: 2229 6256/8730/1029
Resi: 2247 6526/6638/22405126
Telex: 2021 2333, ARBI IN, Fax : 2226 0174

With Best Compliment From
MECHANICAL ENGINEERS & FABRICATORS.
PSCO, Howrah Amta Road, Balitikuri Howrah

M/S. POLY UDYOG
Unipack Industries
Manufacturers & Printers of HM; HDPE,
LD, LLDPE, BOPP PRINTED BAGS.
31-B, Jhowtalla Road
Kolkata - 700 017, Phone: 2247 9277, 2240 2825
Tele Fax: 22402825

SAROJ DUGAR
Fancy saree, bed covers
34/1J. Ballygunge Circular Road
Kolkata - 700 019, Phone: 2475 1458

VEEKEY ELECTRONICS
M/s. Madhur Electronics, 29/1B, Chandni Chowk
3rd floor, Kolkata - 700 013
Ph: 2352-8940/334-4140,(Resi) 2352-8387/9885

KRISHNA JUTE COMPANY
Jute Broker & Dealer
9, India Exchange Place, Kolkata - 700 001
Phone : 2220-0874/9372, 2221-0246, 30229372

ELECTO PLASTIC PRODUCTS PVT. LTD.
22 Rabindra Sarani, Kolkata - 700 073
Phone : 2236-3028, 2237-4039

BHEEKAM CHAND DEEP CHAND BHURA
M/s. D. C. Group Pvt. Ltd, Sagar Estate, 5th Floor
2, Clive Ghat Street, Kolkata - 700 001
Phone : 2220-5229/5121

MOUJIRAM PANNALAL
Citizen Umbrella
45, Armenian Street, Kolkata - 700 001
Ph : (Shop) 2242-4483/2248-8086,
(O) 2268-1396/30924653, Fax : 2271-2151,

ROYAL TOUCH OVERSEAS CORPORATION
47, Pandit Purushottam Roy Street, 2nd Floor,
Kolkata - 700 007, Phone : (033)2270-1329, 2272-1033
Fax : 91-33-22702413

NAKODA METAL
Deals in all kinds of Aluminium
32A Brabourne Road, Kolkata - 700 001
Ph: 2235-2076, 2235-5701

MUSICAL FILMS (P) LTD
9A, Esplanade East, Kolkata - 700 069

SAGAR MAL SURESH KUMAR
187, Rabindra Sarani, Kolkata - 700 007
Ph: Gaddy- 2273-1766, 2268-8846
Mobile: 9331019835, Resi : 2355-9641/7196

B.W.M.INTERNATIONAL
Manufacturers & Exporters
Peerkhanpur Road, Bhadohi - 221401 (U.P.)
Ph: (O) 05414-25178, 25779, 25778
Fax: 05414-25378 (U.P.) 0151-202256 (Bikaner)

DR. NARENDRA L. PARSON & RITA PARSON
18531 Valley Drive
Villa Park, California 92667 U.S.A.
Phone : 714-998-1447714998-2726,
Fax : 7147717607

V.S. JAIN
Royal Gems INC.
632 Vine Street, Suit# 421
Cincinnati OH 45202
Phone : 1-800-627-6339

RANJIT SINGHI
Singhi Exports (P) Ltd.
P15 New C.I.T. Road
Kolkata - 700 073

RAJIB DOOGAR
305, East Tomaras Avenue
Savoy, IL 61874-9495
USA
Ph : 001-217-355-0174/0187, e-mail : doogar@uiuc.edu

SMT. KUSUM KUMARI DOOGAR
C/o Shri P.K. Doogar,
Amil Khata, P.O. Jiaganj, Dist: Murshidabad, Pin- 742123
West Bengal, Phone: 03483-56896

M/S. SETHIA OIL INDUSTRIES LTD.
Manufactureres of De oiled cakes & Refined oil.
Lucknow Road, PO. Sitapur - 261001 (U.P.)
Phone: 05862/42017/42073

M/S. BEEKAY VANIJYA PVT. LTD.
City Centre, 19, Synagogue Street
5th Floor, Room No. 534-535, Kolkata - 700 001
Phone: 2210-3239, 2232-0144, 2238-7281
Fax: 033-2210-3253 (M) 9831001739
e-mail : bktarfab@satyam.net.in

जो हिंसात्मक प्रवृत्ति से विलग है,
वही बुद्ध, ज्ञानी हैं

WITH BEST WISHES

DEEPAK KUMAR SANDEEP KUMAR NAHATA
Dealers in Diamond
Manufactures of Precious & Semi Precious Ornaments
63A, Burtolla Street, Kolkata - 700 007,
Phone: (G) 2268-0900 (M) 9830094325

DHANDHIA BROS
6/1 Hara Prasad Dey lane,
Kolkata - 700 007
Phone: (R) 2269-6241/2950 (O) 2239-0581

In the Sweet Memory of my mother
LATE SOVABOTI DUSAJ
Shri Manilal Susaj
6A, Rabindra Sarani, Kolkata - 700 001
Phone : 2237-5869 / 6476, Mobil : 98301017091, 9830142191

With Best Compliment from :-
SURANA WOOLEN PVT. LTD.
MANUFACTURERS * IMPORTERS * EXPORTERS
67-A, Industrial Area, Rani Bazar,
Bikaner - 334 001 (India)
Phone : 22549302, 22544163 Mills
22201962, 22545065 Resi
Fax : 0151 - 22201960
E-mail : suranawl@datainfosys.net

In the memory of Badindrapat Singhji Dugar
GAUTAM DUGAR
34/1/K, Ballygunge Circular Road
Kalkata - 700 019
Phone: (O) 2475-1109/6835
(R) 2474-3566, (M) 31022126

ARIHANT JEWELLERS
Shri Mahendra Singh Nahata
M/s BB Enterprises
8A, Metro Palaza, 8th Floor 1,Ho Chi Minh Sarani,
Kolkata - 700 071, Ph: 2288 1565 / 1603

M/s. MUKUND JEWELLERS
manufactures of American Diamand
Jewellery, Gold & Silver Goods &
Dealers in imitation Jewellery
P-37A, Kalakar Street,
Kolkata - 700 007, Ph: 2232 3876

KAMAL SINGH KARNAWAT
7,Khelat Ghosh Lane, Kolkata - 700 006
Dealers in Diamonds Precious Stones
Ph: (R) 2259-3885, (M) 03332391278

N. K. JEWELLERS
Valuable Stones, Silver wares
Authorised Dealers: Titan, Timex & H. M. T.
2, Kali Krishna Tagore Street (Opp. Ganesh Talkies)
Kolkata - 700 007 (Phone : 2239-7607)

RATAN LAL DUNGARIA
16B, Ashutosh Mukherjee Road
Kolkata - 700 020, Ph: (Resi) 2455-3586

M/S. PARSON BROTHERS
18B, Sukeas Lane, Kolkata - 700 007
Phone: 2242-3870

KESARIA & CO.
Jute Tea Blenders & Packeteers Since 1921
2, Lal Bazar Street, Todi Chambers, 5th Floor
Kolkata - 700 001
Ph: (O) 2248-8576/0669/1242
(Resi) 2225-5514, 2237-8208, 2229-1783

With Best Wishes

INDUSTRIAL PUMPS & MOTOR AGENCIES

40, Strand Road, 4th Floor, R.N.3, Kolkata - 700 001

M.L. CHOPRA & CO.

Freight & Chartering Brokers

12-B, N. S. Road; Kolkata - 1

PH : 2220 5059 / 2220 1130, EMAIL : freya@cal.vsnl.co.in

With Best Compliments From-

STEELUX INDIA; CIVIL CONTACTORS

13/5 Hazi Jakaria Lane, Kolkata - 700 006

ABL INTERNATIONAL LTD.

1, Shakespeare Sarani, Kolkata - 700 071.

Ph: 2282-7615/7617/2726, Gram : Sudera

SHIV KUMAR JAIN

"Mineral House"

27A, Camac Street, Kolkata - 700 016

Ph: (Off) 2247-7880, 2247-8663, Res) 2247-8128, 2247-9546

MAHENDRA TATER

147, M. G. Road

Kolkata - 700 007, Phone : 2227-1857

M/S. SARAT CHATTERJEE& CO. (VSP) PVT. LTD.

Regd Office 2, Clive Ghat Street, (N. C. Dutta Sarani)

2nd Floor, Room No. 10, Kolkata - 700 001

Ph: 2220-7162, 2261-0540, Fax : (91)(33)2220 6400

e-mail: sccbss@cal2.vsnl.net.in

APARAJITA BOYED
M/s. Suravee Business Services Pvt. Ltd.
9/10, Sitanath Bose Lane,
Salkia, Howrah - 711 106, Ph: 2665-3666/2272
e-mail: Suravee@cal2.vsnl.net.in / sona@cal3.vsnl.net.in

SHRI JAIN SWETAMBER SEVA SAMITI
13, Narayan Prasad Babu Lane
Kolkata - 700 007, Ph: 2269-1408

BADALIA GEMS PVT. LTD.
BADALIA HOUSE
66/3, Beadon Street, Kolkata - 700 006
Phone : (O) 2554-8999/8997 (R) 2533-9985
Fax : 033 5548999, e-mail : shashibadlia@usa.net

CREATIVE
12, Dargah Road, Post Box 16127, Kolkata - 700 017
Ph: 2240 3758 / 3450 / 1690 / 0514
Fax : (033) 2240 0098, 2247 1833

JAIPUR EMPORIUM JEWELLERS
Anandlok
227 A. J. C. Bose Road, Kolkata - 700 020
Ph: 2280-0494, 2287-2650, Resi : 2358-0602, (M) 31074937

DR. G. C. GULGULIA
10, middleton Street, Kolkata - 700 071
Ph: (R) 22291925 (C) 22174695

CALTRONIX
12 India Exchange Place, 3rd Floor, Kolkata - 700 001
Phone: 2220 1958/4110

PABITRA KUMAR DOOGAR
Amil Khata, P.O. Jiaganj, Dist: Murshidabad, Pin- 742123
West Bengal, Phone: 03483-56896

ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी।

KUSUM CHANACHUR

Founder : Late. Sikhar Chand Churoria

Kusum
QUALITY PRODUCT

Our Quality Product of :

Anusandhan
Kolkata Nasta
Badsha Khan
Picnic
Raja
Shubham
Bhaonagari Ghantia
Jocker
Lajawab
Papri Ghantia
Rim Jhim
Tinku

MANUFACTURED BY

M/s. K. K. Food Product
Prop. Anil Kumar, Sunil Kumar Churoria
P. O. Azimganj, Dist: Murshidabad
Pin No.- 742122, West Bengal
Phone No.: 03483-253232,
Fax No.: 03483-253566

KOLKATA ADDRESS:

36, Maharshi Debendra Road, 3rd Floor Room No.- 308
Kolkata - 700 006, Phone No.: 2259-6990, 3093-2081
Fax No.: 033-2259-6989, (M) 9830423668

शस्त्र हिंसा एक से एक बढ़कर है।
किन्तु अशस्त्र अहिंसा से बढ़कर कोई शस्त्र नहीं।
अर्थात् अहिंसा से बढ़कर कोई साधना नहीं है।

THE GANGES MANUFACTURING COMPANY LIMITED

Chatterjee International Centre
33A, Jawaharlal Nehru Road,
6th Floor, Flat No. A-1
Kolkata - 700 071

Phone:

Gram "GANGJUTMIL"
Fax: + 91-33-245-7591
Telex: 021-2101 GANG IN

2226-0881
2226-0883
2226-6283
2226-6953

Mill

BANSBERIA

Dist: HOOGHLY
Pin-712 502
Phone: 2634-6441/2644-6442
Fax: 2634 6287

जैन मत तब से प्रचलित है
जबसे संसार में सृष्टि का आरम्भ हुआ।
मुझे इसमें किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं है
कि जैन धर्म वैदान्तिक दर्शनों से पूर्व का हैं।

Dr. Satish Chandra
Principal Sanskrit College, Kolkata

Estd. Quality Since 1940

BHANSALI

Quality. Innovation. Reliability

BHANSALI UDYOG PVT. LTD.

(Formerly: Laxman Singh Jariwala)

Balwant Jain - Chairman

A - 42, Mayapuri, Phase - 1, New Delhi - 110 064
Phone: 28114496, 28115086, 28115203
Fax: 28116184
e-mail: bhansali@mantraonline.com

शुभ कामनाओं सहित —

मनुष्य जीवन में ही सत्य कार्य करने का अवसर उपलब्ध होता है।

अहिंसा अमृत है, हिंसा विष है।

अनाम

PICK UP ALL U WANT
UNDER ONE ROOF

▶▶Groceries ▶▶ Edible Oils ▶▶ Personal Care ▶▶ Imported Pastas, Chocolates, Sauces, Gift Items, etc. ▶▶Hygiene ▶▶Baby Care ▶▶Stationery ▶▶other Household Items

Stop 2 Shop

AT YOUR COMPLETE SUPERMARKET

NAHAR PARK
45/4A, Chakraberia Road (S), Kolkata - 700025
(Near Jadu Babu's Bazar)
Phone: 24544696

Store Timings : 7.00 am to 9pm
All days open except Thursday

FREE HOME DELIVERY

All Prices BELOW M.R.P.

PARKING AVAILABLE

28 water supply schemes
315,000 metres of pipelines
110,000 kilowatts of pumping stations
180,000 million litres of treated water
13,000 kilowatts of hydel power plants

(And in place where Columbı eared to tread)

SPML

Engineering Life

SUBHASH PROJECTS & MARKETING LIMITED

113 Park street, Kolkata 700 016
Tel : 2229 8228, Fax : 2229 3882. 2245 7562
e-mail : info@subhash.com, website: www.subhash.com

Head Office: 113 Park Street, 3rd floor, South Block, Kolkata-700016 Ph:(033)2229-8228.
Registered Office: Subhash House, F-27/2 Okhla Industrial area, Phase II New Delhi-110 020
Ph: (011) 692 7091-94, Fax (011) 684 6003. Regional Office: 8/2 Ulsoor Road, Bangalore 560-042 Ph: (080) 559 5508-15, Fax: (080) 559-5580.

Laying pipelines across one of the nation's driest region, braving temparature of 50⁰ C.

Executing the entire water intake and water carrier system including treatment and allied civil works for the mammoth Bakreswar Thermal Power Project.

Bulling the water supply, fire fighting and effluent disposal system with deep pump houses in the waterlogged seashore of Paradip.

Creating the highest head-water supply scheme in a single pumping station in the world at Lunglei in Mizoram-at 880 metres, no less.

Building a floating pumping station on the fierce Brahmaputra.

Ascending 11,000 feet in snow laden Arunachal Pradesh to create an all powerful hydro-electric plant.

Delivering the impossible, on time and perfectly is the hallmark of Subhash Projects and Marketing Limited. Add to that our credo of when you dare, then alone you do. Resulting in a string of acheivements. Under the most arduous of conditions. Fulfilling the most unlikely of dreams.

Using the most advanced technology and equipment, we are known for our innovative solution. Coupled with the financial strength to back our guarantees.

Be it engineering design. Construction work or construction management. Be it environmental, infrastructural, civil and power projects. The truth is we design, build, operate and maintain with equal skill. Moreover, we follow the foolproof Engineering, Procurement and Construction System. Simply put, we are a single point responsibility. A one stop shop.

So, next time, somebody suggests that deserts by definition connote dryness, you recommend he visit us for a lesson in reality.

With Best Compliments

Since 1926

B.C. JAIN JEWELLERS PVT. LTD.

22, Camac Street
3rd floor, Block-A
Kolkata - 700 007
Phone: 2283 6203 / 6204 / 0056
Fax : 2283 6643
Resi : 2358 6901, 2359 5054

Postal Registration No. SSRM/Kol/RMS/WB/R.N.P.-070/2004-2006.
Vol. XXIX. No. 1 TITTHAYARA April 2005
Registered with the Registrar of Newspapers for India
Under R. N. No. 3018/77

ज्ञानी वही है जो किसी भी प्राणी की हिंसा न करें। सभी जीव जीना चाहते है मरना कोई नहीं चाहता अतः संसार के त्रस और स्थावर सभी प्राणियों को जाने या अनजाने में न मारना चाहिये, न दूसरों से मरवाना चाहिये, ना ही मन वचन काया से किसी को पीड़ा पहुँचाना चाहिये।

Kamal Singh Rampuria
Rampuria Mansions

17/3, Mukhram Kanoria Road, Howrah
Phone No. : 2666-7212/7225